

आह्वान पुस्तिका-1

छात्र-नौजवान
नयी शुरुआत
कहाँ से करें?

‘आह्वान कैम्पस टाइम्स’ के
तीन सम्पादकीय लेखों की शृंखला



राहुल फ़ाउण्डेशन

लखनऊ

ISBN 978-81-87728-38-8

मूल्य : रु. 10.00

पहला संस्करण : जनवरी, 2006

पुनर्मुद्रण : जुलाई, 2006

प्रकाशक : **राहुल फ़ाउण्डेशन**

69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ-226 006 द्वारा प्रकाशित

आवरण : **रामबाबू**

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

Chhatra-Naujawan nayee Shuruaat Kahan se Karen
Series of three editorial articles published in 'Aahwan'

प्रकाशकीय

पिछले पन्द्रह वर्षों से प्रकाशित हो रही छात्रों-युवाओं की पत्रिका 'आह्वान कैम्पस टाइम्स' शिक्षा, बेरोज़गारी, संस्कृति और युवाओं से जुड़े विभिन्न सामाजिक प्रश्नों के साथ ही छात्र-युवा आन्दोलन के सवालों पर लगातार प्रखर विचारोत्तेजक सामग्री देती रही है।

पिछले दिनों पत्रिका के तीन सम्पादकीय लेखों में छात्र-युवा आन्दोलन के सामने मौजूद बेहद अहम सवालों पर सोचते हुए ऐसे ज़रूरी मुद्दे उठाये गये हैं जिन पर, हमारी समझ से, परिवर्तन की इच्छा रखने वाले हर नौजवान को अवश्य ही विचार करना चाहिए। इसी दृष्टि से हमने इन तीनों लेखों को पुस्तिकाकार प्रकाशित करने का निर्णय लिया ताकि व्यापक युवा आवादी के बीच इन्हें पढ़ा जा सके। ये लेख जनवरी 2003 से जनवरी 2005 के बीच तीन अंकों में सिलसिलेवार प्रकाशित हुए थे।

भावी क्रान्ति की तैयारी की राह की कुछ बुनियादी बाधाओं, समस्याओं और चुनौतियों की चर्चा करते हुए इन लेखों में क्रान्तिकारियों की नयी पीढ़ी का आह्वान किया गया है कि उन्हें क्रान्ति के विज्ञान को समझना होगा और अपनी वैज्ञानिक समझ के सहारे अपने देश-काल की परिस्थितियों को समझकर नयी क्रान्तियों की राह निकालनी होगी।

हमें आशा है कि यह पुस्तिका भारत में क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन की लम्बी और संघर्षपूर्ण राह के राहियों को आगे का रास्ता तलाशने में मददगार होगी।

अगर तुम युवा हो

स्मृतियों से कहो
पत्थर के ताबूत से बाहर आने को।

गिर जाने दो
पीले पड़ चुके पत्तों को,
उन्हें गिरना ही है।

बिसूरो मत,
ना ही ढिंढोरा पीटो
यदि दिल तुम्हारा सचमुच
प्यार से लबरेज़ है।

तब कहो कि विद्रोह न्यायसंगत है
अन्याय के विरुद्ध।

युद्ध को आमन्त्रण दो
मुर्दा शान्ति और कायर-निठल्ले विमर्शों के विरुद्ध

चट्टान के नीचे दबी पीली घास
या जज़्ब कर लिये गये आँसू के क़तरे की तरह
पिता के सपनों
और माँ की प्रतीक्षा को
और हाँ, कुछ टूटे-दरके रिश्तों और यादों को भी,
रखना है साथ
जलते हुए समय की छाती पर यात्रा करते हुए
और तुम्हें इस सदी को
जालिम नहीं होने देना है।

रक्त के सागर तक फिर पहुँचना है तुम्हें
और उससे छीन लेना है वापस
मानवता का दीप्तिमान वैभव,
सच के आदिम पंखों की उड़ान,
न्याय की गरिमा
और भविष्य की कविता
अगर तुम युवा हो।

किस चीज़ का इन्तज़ार है? और कब तक? दुनिया को तुम्हारी ज़रूरत है!

घुटन और बेचैन सुगबुगाहटों से भरे हुए, नयी शताब्दी के दो उनींदाे वर्ष बीत चुके हैं। पूरी पृथ्वी पर, यहाँ-वहाँ पूँजी की विनाशकारी रक्तचूषक जकड़बन्दी के विरुद्ध विद्रोहों, संघर्षों और जनान्दोलनों का सिलसिला गत दो वर्षों के दौरान भी, पहले के वर्षों की तरह निरन्तर जारी रहा है, लेकिन इस निरन्तरता में कोई ऐसी गुणात्मक उछाल नहीं आयी है जिससे इतिहास का गतिरोध टूटने का कोई महत्त्वपूर्ण संकेत मिला हो। विश्व-ऐतिहासिक स्तर पर विपर्यय (रिवर्सल) के बाद का गतिरोध अभी क़ायम है। क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर अभी हावी है।

1960 के दशक में अफ़्रीकी देशों के राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्षों का जनज्वार पूरी दुनिया को हिला रहा था। आज वही अफ़्रीका शीतनिद्रा की-सी स्थिति में है। लातिन अमेरिका की यह विशेषता है कि वह कभी निश्चल नहीं होता। यह विशेषता शायद उस इतिहास की देन है जिसने उपनिवेशवादियों के सर्वाधिक बर्बर क़त्लेआम से लेकर नवउपनिवेशवादी दौर के सर्वाधिक ज़ालिम तानाशाहों की हुकूमतें देखी हैं। आर्थिक नवउपनिवेशवाद के दौर में उदारीकरण की नीतियों की पहली प्रयोगशाला लातिन अमेरिका रहा है, और इस महाविनाश के खिलाफ़ महाबली अमेरिका के ऐन पिछवाड़े इस पूरे महादेश के मज़दूर, किसान और छात्र-युवा लगातार लड़ रहे हैं। लेकिन ये सभी संघर्ष पुराने दौर के संघर्षों की निरन्तरता में ही हो रहे हैं। दुनिया के हालात में, दुश्मन की राजनीति और अर्थनीति में जो अहम बदलाव विगत लगभग डेढ़-दो दशकों के दौरान आये हैं, उनके कारगर प्रतिरोध की नयी सांगोपांग रणनीति लातिन अमेरिकी जनउभारों, विद्रोहों और प्रतिरोध संघर्षों में अभी विकसित नहीं हो सकी है। अरब विश्व में बारूद की ढेरी एकत्र हो चुकी है। इराक़ और फ़िलिस्तीन की जनता के साथ पूरी अरब जनता खड़ी है। यह पूरा क्षेत्र साम्राज्यवादी दुनिया के अन्तरविरोधों की गाँठ बन चुका है। आने वाले दिनों में अमेरिका और

पूरे पश्चिम की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध अरब जनता के आक्रोश का प्रचण्ड विस्फोट साम्राज्यवाद को गम्भीर रूप से संकटग्रस्त और कमज़ोर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। लेकिन अरब दुनिया में आने वाले वर्षों में जो होने वाला है, वह मुख्यतः राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों के दौर के छूटे हुए कुछ कार्यभारों को पूरा करने की प्रक्रिया ही होगी। साम्राज्यवाद के नये दौर के अन्तरविरोध उसके बाद ही वहाँ तीखे होकर एजेण्डे पर आ सकेंगे। इस सच्चाई की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि पूँजी के विरुद्ध संघर्षों की अगुवाई करने वाले मज़दूर वर्ग का हरावल दस्ता फ़िलहाल अरब जगत में राजनीतिक-सांगठनिक दृष्टि से, अपेक्षाकृत, काफ़ी पिछड़ा हुआ है।

शेष एशिया की स्थिति आज काफ़ी मिली-जुली है। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में भारी किसान आबादी ने संगठित होकर चीन, वियतनाम, कोरिया, कम्पूचिया आदि देशों में साम्राज्यवाद, उसके पुछल्ले देशी पूँजीपतियों और सामन्तों को आधी सदी पहले ज़बरदस्त शिकस्त दी थी और समाजवाद की दिशा में लम्बे डग भरे थे। लेकिन वहाँ पूँजीवाद की बहाली के बाद आज खुले बाज़ार की नीतियों का स्वर्ग-नर्क (मुट्टीभर के लिए स्वर्ग और शेष के लिए नर्क) रचने का काम अन्धाधुन्ध जारी है। अमेरिकी गुण्डागर्दी के खिलाफ़ उत्तर कोरिया का डटे होना एक सकारात्मक बात है, लेकिन यह मानना होगा कि समाजवादी प्रयोगों की प्रगति वहाँ कभी की रुक चुकी है। आगे आशा की जा सकती है कि अतीत में समाजवादी प्रयोग की नयी दिशा उद्घाटित करने वाले चीन देश में भूमण्डलीकरण के नये अन्तरविरोधों के उग्र होने के साथ ही (और यह प्रक्रिया जारी है), आज जारी जनान्दोलनों और विद्रोहों के बीच से एक नयी क्रान्ति की धारा फूटेगी और अतीत की विकास यात्रा को आगे बढ़ाने वाला हरावल दस्ता फिर से संगठित होगा। जो जनता समाजवाद के उन्नत प्रयोग देख चुकी है, वह फिर से अपनी उस विरासत को पुनर्जीवित करके अवश्य उठ खड़ी होगी, लेकिन स्थितियों के अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि वहाँ अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करण का निर्माण निकट भविष्य की चीज़ नहीं है। इण्डोनेशिया, मलेशिया, श्रीलंका और पाकिस्तान जैसे सापेक्षतः विकसित उत्पादक शक्तियों वाले देशों से लेकर बर्मा, कम्पूचिया, लाओस जैसे पिछड़े, विभिन्न देशों तक में साम्राज्यवाद और देशी पूँजीपतियों की सत्ता के विरुद्ध अन्तरविरोध तीखे हो रहे हैं, लेकिन किसी आमूलचूल राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन के लिए, अलग-अलग इतिहासजन्य कारणों से इन देशों में कोई वास्तविक नेतृत्वकारी केन्द्र अभी संगठित होने की प्रारम्भिक अवस्था में भी नहीं है। फ़िलिस्तीन में क्रान्तिकारी जनसेना विगत लगभग आधी सदी से

सशस्त्र संघर्ष चला रही है, लेकिन समस्या यह है कि हालात में आये बुनियादी बदलावों पर गौर करने के बजाय वहाँ के सर्वहारा क्रान्तिकारी अभी भी अतीत की क्रान्तियों (विशेषकर चीनी क्रान्ति) की रणनीति एवं रास्ते को ही लागू करने की कोशिश कर रहे हैं और यही उनके संघर्ष के ठहराव का बुनियादी कारण है। नेपाल में दुर्द्धर्ष, अप्रतिरोध क्रान्तिकारी जनयुद्ध अपने देश की परिस्थितियों के हिसाब से मौलिक प्रयोग करता हुआ विगत सात वर्षों से लगातार आगे डग भर रहा है और साम्राज्यवादी देशों से लेकर पड़ोसी भारत की सरकार की तमाम मदद के बावजूद नेपाली शासक वर्ग उसे कुचलने में विफल रहा है। आज विश्वव्यापी प्रतिक्रिया के माहौल में, खासकर पेरू के क्रान्तिकारी संघर्ष के पीछे हटने के बाद, नेपाल की मेहनतकश जनता के इस संघर्ष की विशेष अहमियत है। लेकिन नेपाल एक बेहद पिछड़ी उत्पादक शक्तियों वाला छोटा देश है। वह साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी क्रान्ति (राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति) को अंजाम दे रहा है। आज अफ्रीका और सब-सहारा के कुछ बेहद पिछड़े, छोटे, विभिन्न देशों को छोड़कर, एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के अधिकांश देश इस दौर को पार कर चुके हैं। इन महाद्वीपों के अधिकांश देश आज, पिछड़े हुए ही सही, लेकिन पूँजीवादी देश बन चुके हैं। यहाँ की व्यापक जनता को भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में, साम्राज्यवाद और अपने देश के सत्तारूढ़ पूँजीपतियों के विरुद्ध एक नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति करनी है। यह नयी क्रान्ति रूस की अक्टूबर क्रान्ति और चीनी क्रान्ति की वारिस होगी, उनकी अगली कड़ी होगी और पूरी दुनिया में पूँजी और श्रम के बीच के महासमर का अगला चक्र इन नयी समाजवादी क्रान्तियों की धारा के गति पकड़ने के बाद ही शुरू हो सकेगा। तब तक का समय इस महासमर के विगत चक्र और भावी चक्र के बीच का संक्रमण-काल ही होगा, जिस दौरान, मुमकिन है कि अतीत के कुछ छूटे हुए कार्यभार निपटाये जाते रहें। इस दृष्टि से नेपाल की क्रान्ति अपने ऐतिहासिक महत्त्व के बावजूद, प्रवृत्तिनिर्धारक 'ट्रेण्ड सेटर' और नवपथान्वेषी, 'पाथब्रेकिंग' नहीं हो सकती।

तीसरी दुनिया (एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका) के जिन भूतपूर्व औपनिवेशिक देशों में, (1) चार-पाँच दशक पहले सत्ता पूँजीपति वर्ग के हाथ में आयी और साम्राज्यवादी लूट के साथ समझौता करके उसने वहाँ (एक रुग्ण, पिछड़ा और विकलांग किस्म का ही सही, लेकिन) पूँजीवादी रूपान्तरण का काम किया, यानी जो आज पिछड़े हुए पूँजीवादी देश बन चुके हैं; (2) पश्चिम के देशों से काफ़ी पीछे होने और साम्राज्यवादी शोषण के बावजूद जिन देशों में उद्योगों का एक आधारभूत ढाँचा विकसित हुआ है; (3) जिनके पास खाने लायक अनाज पैदा करने की ज़मीन और कच्चे माल के पर्याप्त

स्रोत हैं यानी जिनकी अर्थव्यवस्था वैविध्यपूर्ण (डायवर्सिफ़ायड) है; (4) जो देश क्षेत्रफल और आबादी की दृष्टि से भी यदि बहुत बड़े नहीं तो बहुत छोटे भी नहीं हैं, उन्हीं देशों में नयी शताब्दी में 'ट्रेण्ड' सेट करने वाली नयी क्रान्तियों की सम्भावना वस्तुगत रूप से अधिक हो सकती है।

यह आकलन अपने आप में अलग से एक विस्तृत चर्चा का विषय है, लेकिन ऐसे देशों की अगली पंक्ति में, निश्चय ही, भारत का भी स्थान है। विश्व पूँजीवाद के खिलाफ़ असन्तोष तो पूरी दुनिया में, यहाँ तक कि विकसित देशों की जनता में भी सुलग रहा है, लेकिन दबाव सबसे अधिक पिछड़े और गरीब देशों पर है। ये ही देश आज भी साम्राज्यवाद की कमज़ोर कड़ी हैं और दुनिया को बदलने वाले भावी विस्फोटों की ज़मीन भी ऐसे देशों में तैयार हो रही है जहाँ लूटने और एकाधिकार जमाने के लिए प्रचुर प्राकृतिक सम्पदा, श्रम-सम्पदा और बौद्धिक सम्पदा है।

भारत एक ऐसा ही देश है जहाँ उदारीकरण-निजीकरण के दौर ने पूँजीवाद की सारी बुराइयों और आपदाओं को एकदम नग्नतम और वीभत्सतम रूप में उजागर कर दिया है। पूँजीवादी विकास का रास्ता आधी सदी बाद एक अन्धी सुरंग के छोर पर जा पहुँचा है। आम जनता के दुखों और गरीबी के सागर में समृद्धि के टापुओं पर विलासिता की मीनारों गगनचुम्बी होती जा रही हैं। कारों, मोटरसाइकिलों, फ़्रिजों, एयरकण्डीशनरों और तमाम विलासिता के सामानों से बाज़ार पटते जा रहे हैं। दूसरी ओर, भूख और कुपोषण से मौतें हो रही हैं। दवा-इलाज की बुनियादी सुविधाएँ भी आम लोगों को नसीब नहीं। देश की आबादी का पाँचवाँ हिस्सा बेरोज़गारी और अर्द्धबेरोज़गारी का शिकार है। हर वर्ष पूँजी की मार से त्रस्त करोड़ों छोटे-मँझोले किसान अपनी जगह-ज़मीन से उजड़कर उजरती गुलामों की क़तार में शामिल हो रहे हैं। मज़दूरों को पाशविक स्थितियों में बारह-बारह घण्टे खटने के बाद भी परिवार का पेट भरने लायक़ दिहाड़ी नहीं मिलती। 95 प्रतिशत से भी अधिक शहरी देहाती मज़दूर दिहाड़ी या ठेके पर या अस्थायी मज़दूर के रूप में खटते हैं। पहले संगठित संघर्षों से जो भी हक़ उन्होंने हासिल किये थे, एक-एक करके उनका अस्सी प्रतिशत हिस्सा छीना जा चुका है। अफ़सरों, डॉक्टरों, इंजीनियरों और ऊँचे ओहदों वाले कुछ बुद्धिजीवियों को छोड़कर आम मध्य वर्ग का बड़ा हिस्सा भी महँगाई और बेरोज़गारी से त्रस्त है। उच्च शिक्षा और तकनीकी-व्यावसायिक शिक्षा के दरवाज़े तो आम घरों के नौजवानों के लिए लगभग बन्द हो चुके हैं। फ़ीसों बढ़ाने, सीटें घटाने और शिक्षा संस्थानों को पूँजीपति घरानों को सौंपते जाने का सिलसिला लगातार जारी है। प्राथमिक-माध्यमिक स्तर पर अमीर-गरीब के बीच का बँटवारा इतना तीखा पहले

कभी नहीं था।

ये हालात जिन आर्थिक नीतियों के परिणाम हैं, उन पर शासक वर्गों की सभी पार्टियों की आम सहमति हैं। विरोध का जुबानी जमाखर्च करती हुई चुनावी वामपन्थी पार्टियाँ भी, इसी रास्ते की राही बन चुकी हैं। दरअसल, समाजवाद के मुखौटे की अब कोई गुंजाइश ही नहीं है। भारत के पूँजीपति वर्ग ने और अधिक मुनाफ़ा निचोड़ने के वास्ते पूँजी और तकनोलॉजी के लिए साम्राज्यवादियों के आगे घुटने टेक दिये हैं और पूरे देश को साम्राज्यवादी लूट का खुला चरागाह बना दिया है। यही आर्थिक नवउपनिवेशवाद का सारतत्त्व है। इसी अर्थनीति के अनुरूप पूँजीवादी राजनीति ने भी रूप बदला है। पूँजीवादी जनवाद का सारतत्त्व – पूँजीपति वर्ग की तानाशाही – एकदम सामने आता जा रहा है। एक के बाद एक काले क़ानून बनाकर जनता के रहे-सहे अधिकारों को हड़पा जा चुका है। राज्यसत्ता एक नग्न आतंकवादी मशीनरी का रूप लेती जा रही है। पूँजीवाद के चतुर्दिक संकट और पूँजीपति वर्ग के ज़्यादा से ज़्यादा निरंकुश दमनकारी होते जाने की ही एक प्रातिनिधिक अभिव्यक्ति भारत में (और पूरी दुनिया में भी) फ़ासीवादी उभार के रूप में सामने आ रही है।

आज एक सुधरे हुए “शरीफ़” पूँजीवाद की उम्मीद महज़ आकाश-कुसुम की अभिलाषा ही हो सकती है। इतिहास की गति को पीछे नहीं मोड़ा जा सकता। अतीत में समाधान या विकल्प की खोज व्यर्थ है। विकल्प की तलाश, आगे भविष्य की ओर देखते हुए की जानी चाहिए। दुनिया को आज “बेहतर” पूँजीवाद नहीं, बल्कि पूँजीवाद का विकल्प चाहिए। आज की दुनिया की केन्द्रीय समस्या यह है कि पूँजीवाद अपनी विलम्बित आयु जी रहा है। समस्या यह है कि जिसे इतिहास की कूड़ेदानी में होना चाहिए, वह हमारी छाती पर सवार बैठा है। समस्या सिर्फ़ एक है और रास्ता भी एक ही है। मानवता को आज पूँजीवादी राज, समाज और संस्कृति का विकल्प चाहिए।

और हम यह जोर देकर कहना चाहते हैं कि विज्ञान और मानव-चेतना की हजारों वर्षों की महती प्रगति के बाद, प्रकृति और मनुष्य को मुनाफ़े की हवस से तबाह करती और युद्ध, विनाश एवं भुखमरी का कहर बरपा करती एक मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था मानव इतिहास की आखिरी मंज़िल नहीं है। यह इतिहास का अन्त नहीं है। समाजवाद की पराजय के हवाले दे-देकर पूँजीवाद के भाड़े के टट्टू लोगों को यह विश्वास दिलाने की लगातार कोशिश करते हैं कि कोई दूसरा विकल्प है ही नहीं। लेकिन जो लूट की चक्की में पिस रहे हैं, जिनके सामने कोई रास्ता नहीं, जो देखते हैं कि काम करने वाली भारी आबादी की हड्डियों से मुट्ठीभर लोगों के लिए स्वर्ग की सीढ़ियाँ तैयार की जाती हैं, जो देखते हैं कि सारी प्राकृतिक सम्पदा और मानवीय

क्षमता की मौजूदगी के बावजूद मुनाफ़े के लिए उत्पादन के नियम, और उत्पादन के सभी साधनों पर थोड़े से लोगों की निजी इज़ारेदारी के कारण, बहुसंख्यक लोगों का जीना मुहाल है, वे चुप नहीं बैठेंगे। वे सामूहिक आत्महत्या नहीं करेंगे। वे पशु नहीं बन जायेंगे। वे छिटपुट विद्रोहों के द्वारा यह साबित भी कर रहे हैं। उनका अगला क़दम होगा योजनाबद्ध ढंग से, सुविचारित क्रान्ति की राह निकालना और नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना।

बीसवीं शताब्दी की समाजवादी क्रान्तियों ने पूँजीवाद का विकल्प प्रस्तुत भी किया था। वे प्रारम्भिक प्रयोग थीं। उनकी पराजय कोई अप्रत्याशित नहीं थी। उन्हें प्रारम्भिक प्रयोगों की विफलता मात्र ही माना जा सकता है। अतीत में भी ऐसा हुआ है कि क्रान्तियों के प्रथम चक्र विफल हुए हैं। जड़ता की शक्तियों पर प्रगति की शक्तियाँ पहले ही चक्र में विजयी नहीं होतीं। बीसवीं शताब्दी की महान क्रान्तियों के प्रयोगों से सबक लेकर और पूँजीवाद के नये तौर-तरीकों-तरकीबों-तिकड़मों का अध्ययन करके इस सदी में नयी क्रान्तियों की राह निकाली जायेगी। और जैसा कि हमने ऊपर कहा है, भारत इस सदी की नयी क्रान्ति की एक सम्भावनासम्पन्न प्रयोग-भूमि है। अब ज़रूरत है उन साहसी प्रयोगकर्ताओं की, जो समाज को बदलने के विज्ञान को जनता को जागृत और संगठित करने का उपकरण बनायेंगे, जो जीवन को बदलने का हथियार जीवन की जानकारी से गढ़ेंगे।

ज़रूरत है ऐसे बहादुर, विचारसम्पन्न नौजवानों की, जो इस काम को अंजाम देने के लिए आगे आयें। यह तो सभी महसूस करते हैं कि उनके माँ-बाप को उनकी ज़रूरत है। जो लोग यह महसूस करते हैं कि समाज को उनकी ज़रूरत है, वे ही इतिहास बदलने के औज़ार गढ़ते हैं और परिवर्तनकामी जनता के हिरावल बनते हैं। आज एक बार फिर सब कुछ नये सिरे से शुरू करना है और इसके लिए कोई मसीहा धरती पर नहीं आयेगा। बदलाव की तैयारी आम जनता के कुछ बहादुर युवा सपूत ही शुरू करेंगे। ऐसे ही लोग सच्चे युवा हैं। उनकी संख्या ही बहुसंख्या है। पर अभी वे निराशा या 'क्या करें क्या न करें' की दुविधाग्रस्त मानसिकता से ग्रस्त हैं। सही है, कि हार के समय थोड़ी निराशा आ जाती है। लेकिन कब तक मेरे भाई? अब तो उबरने का समय आ चुका है? इसके संकेतों को पहचानने की कोशिश तो करो! क्या हज़ार ऐसे कारण नहीं है कि हम विद्रोह करें और क्या इनमें से चन्द एक ही काफ़ी नहीं हैं कि हम अपनी तैयारी अभी से शुरू कर दें? क्या एकमात्र रास्ता यही नहीं बचा है कि हम अन्याय के विरुद्ध लड़ें और छिटपुट न लड़ें बल्कि अपनी लड़ाई को सामाजिक क्रान्ति की सीढ़ियाँ बना दें।

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविता से कुछ पंक्तियाँ उधार लेकर हम इस देश की आम जनता के सभी बहादुर, इन्साफ़पसन्द, स्वाभिमानी, संवेदनशील स्वप्नद्रष्टा नौजवान बेटे-बेटियों से पूछना चाहते हैं :

**किस चीज़ का इन्तज़ार है?
और कब तक?
दुनिया को तुम्हारी ज़रूरत है।**

(जनवरी-मार्च 2003)

उम्मीद महज़ एक भावना नहीं है!

इस रात्रि श्यामला बेला में
आगामी प्रातों की ओस सुगन्धित है।
क्या करूँ कि मुझको ओस कणों में
लाल ज्योति दिखती
मानो वे शत-शत रुधिर-बिन्दु थरथरा रहे
उनकी प्रदीप्त किरनों को गिनने का
यत्न कर रहा हूँ

(मुक्तिबोध)

हमारा यह विश्वास हज़ारों वर्षों के वर्ग-संघर्षों के प्रदीर्घ इतिहास से, सैकड़ों वर्ष के पूँजीवाद के इतिहास से और पूँजीवाद-विरोधी मज़दूर क्रान्तियों के विगत चक्र के सकारात्मक-नकारात्मक अनुभवों से जन्मा है कि पृथ्वी के अरबों आम लोग पूँजी के जुवे तले पिसते हुए यूँ ही अकर्मण्यता और निराशा के अँधेरे दलदल में सिर गड़ाये पड़े नहीं रहेंगे। विश्व-पूँजीवाद की आर्थिक बुनियाद खोखली हो चुकी है। अपनी जड़ता की शक्ति के सहारे यह इतिहास की राह में पूरी ताक़त झोंककर अड़ा हुआ है, लेकिन वह ताक़त लगातार क्षरित हो रही है। इसकी मूल ताक़त यह है कि पराजय की चोट से बिखरी हुई परिवर्तनकामी शक्तियाँ अभी नयी परिस्थितियों की सुसंगत समझदारी बनाकर नये सिरे से एकजुट और लामबन्द नहीं हो सकी हैं। मुक्ति की नयी परियोजनाएँ अभी निर्माणाधीन हैं। निश्चय ही, यह प्रक्रिया लम्बी और श्रमसाध्य होगी। लेकिन उतना ही बड़ा सच यह है कि यह अवश्यम्भावी है।

यह उम्मीद महज़ एक भावना नहीं है। उम्मीदें वास्तविक तभी होती हैं, जब उनका एक विज्ञान होता है। प्लेखानोव ने लिखा है कि जनसमुदाय से कटे हुए बुद्धिजीवी हवाई, अतिशयतावादी, गुलाबी उम्मीदों के आदी होते हैं। जनता को क्रान्तिकारी

चेतना देने और उसके जीवन से घनिष्ठता के साथ एकरूप होकर उसके राजनीतिक संघर्षों को आगे विकसित करने का प्रदीर्घ, श्रमसाध्य काम उन्हें उबाऊ प्रतीत होता है। ऐसे लोग सामाजिक क्रान्तियों की जटिल समस्याओं को समझे बगैर क्रान्तियों की हर विजय पर कोलाहलपूर्ण जयनाद करते हैं और क्रान्तिकारियों की भावविह्वल अभ्यर्थना करते हैं। और जब पराजय और अँधेरे की शक्तियों के पुनरुत्थान के दौर आते हैं तो अँधेरे बन्द कमरों में वे शोकाकुल विलाप करने लगते हैं, क्रान्तिकारियों को कोसने लगते हैं और परिवर्तन के हर प्रयास-प्रयोग की अवश्यम्भावी विफलता की भविष्यवाणी करते हुए रक्तपायी वर्गों के शरणागत होकर जीने लगते हैं। परिवर्तनकामी युवाओं को ऐसे बुद्धिजीवियों की छाया तक से दूर रहना होगा। उन्हें इतिहास-निर्मात्री जनता से सीखना होगा, जनता का आदमी बनना होगा और अपनी हिरावल भूमिका की श्रमसाध्य तैयारी करनी होगी। उन्हें हवाई आशावादी नहीं, बल्कि वैज्ञानिक आशावादी बनना होगा।

इस दृष्टि से हम यहाँ भावी क्रान्ति की तैयारी की राह की कुछ बुनियादी बाधाओं, समस्याओं और चुनौतियों की चर्चा करेंगे।



ठहराव और विपर्यय के प्रतिक्रियावादी कालखण्डों में, क्रान्तिकारियों की नयी पीढ़ियों के सामने प्रायः एक समस्या यह आती है कि अतीत की सफल और महान क्रान्तियों की स्मृतियाँ एक तरह की रूढ़िबद्धता और इतिहासग्रस्तता की प्रवृत्ति को जन्म देती हैं। नयी पीढ़ी के क्रान्तिकारी अपने महान पूर्वजों की छाया में चलते हुए भविष्य की मंज़िलें तय करना चाहते हैं, इतिहास से सीखकर वर्तमान का अध्ययन करने और भविष्य के मार्ग का सन्धान करने के बजाय इतिहास का अन्धानुसरण करना चाहते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि यह मार्ग सरल-संक्षिप्त प्रतीत होता है और इसलिए भी होता है कि अपरिपक्वता के चलते महान क्रान्तियों के प्रखर आलोक से हमारी आँखें चूंधिया जाती हैं। मुक्ति की नयी परियोजना की तैयारी और व्यवहार के लिए इस अनुकरणवादी मानसिकता से मुक्त होना होगा, और प्रयोगों के दौरान होने वाली स्वाभाविक ग़लतियों का जोखिम मोल लेने के लिए क्रान्तिकामी युवाओं को तैयार होना होगा।

निश्चय ही, इतिहास-निषेधी प्रवृत्ति का शिकार होना भी एक दूसरी अति होगी और यह भी उतनी ही बड़ी ग़लती होगी। हमें परम्परा और परिवर्तन के द्वन्द्वत्मक अन्तर्सम्बन्ध को सही ढंग से समझना होगा। इतिहासग्रस्तता और इतिहास-निषेध

की दो अतियों से – यानी जड़सूत्रवाद और “मुक्त चिन्तन”, दोनों से ही बचते हुए, हमें वास्तविक इतिहास-बोध से लैस होना होगा।

बहुत कुछ ऐसा है, जो अतीत की सामाजिक क्रान्तियों और वर्ग-संघर्ष के समूचे इतिहास के अध्ययन के बिना जाना-समझा ही नहीं जा सकता। समाज की बुनियादी आर्थिक संरचना और सामाजिक-सांस्कृतिक-वैचारिक-राजनीतिक-वैधिक ऊपरी ढाँचे की गति के कुछ आम नियम हैं, जो वर्ग-समाज के सम्पूर्ण इतिहास की शिक्षा हैं और ये नियम तब तक प्रभावी बने रहेंगे जब तक वर्ग-समाज मौजूद रहेगा। कुछ सामान्य उदाहरणों से हम बात को स्पष्ट करने की कोशिश करेंगे। (क) अब तक का ज्ञात इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है और जब तक वर्गों का अस्तित्व बना रहेगा, वर्ग-संघर्ष ही इतिहास-विकास की कुंजीभूत कड़ी बना रहेगा। (ख) हर शासक-शोषक वर्ग राज्यसत्ता को बल-प्रयोग के केन्द्रीय साधन के रूप में इस्तेमाल करके अपने शोषण-शासन को कायम रखता है, हर राज्यसत्ता का एक वर्ग-चरित्र होता है और बल-प्रयोग के इस उपकरण का जनता बल-प्रयोग के द्वारा ही – यानी सामाजिक क्रान्तियों के द्वारा ही ध्वंस कर सकती है। (ग) उत्पादन के सम्बन्ध जब उत्पादक शक्तियों के विकास की राह में बाधा बन जाते हैं तो उत्पादक शक्तियाँ उन्हें नष्ट करके नये, अनुकूल उत्पादन-सम्बन्ध कायम करती हैं – यह सामाजिक क्रान्तियों की अपरिहार्यता का मूल सूत्र है। – ये कुछ ऐसे सामान्य विकास के नियम हैं जो वर्ग समाज के सुदूर अतीत से सुदूर भविष्य तक की अतिदीर्घ ऐतिहासिक अवधि पर लागू होते हैं।

इसी प्रकार कुछ ऐसे नियम हैं जिनकी प्रासंगिकता तब तक बनी रहेगी जब तक पूँजीवाद किसी न किसी रूप में धरती पर मौजूद रहेगा। (क) पूँजीवाद का खात्मा केवल सर्वहारा वर्ग और उसके नेतृत्व में सम्पन्न सर्वहारा क्रान्ति के द्वारा ही सम्भव होगा। (ख) हर तरह का पूँजीवादी जनवाद पूँजीपति वर्ग का अधिनायकत्व होता है और इसका एकमात्र ऐतिहासिक विकल्प समाजवादी जनवाद होता है जो सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व होता है (ग) सर्वहारा क्रान्ति सर्वहारा वर्ग की एकीकृत पार्टी के नेतृत्व में ही सम्भव है और इस पार्टी के ढाँचे और कार्यप्रणाली के कुछ आम नियम हैं जो अतीत के मज़दूर संघर्षों से पैदा हुए हैं तथा मज़दूर क्रान्तियों के प्रयोगों से सत्यापित और समृद्ध हुए हैं। (घ) सर्वहारा वर्ग का ऐतिहासिक मिशन पूँजीवाद के नाश के साथ ही वर्ग समाज के इतिहास से वर्गविहीन समाज में संक्रमण का हरावल बनना भी है, यह इतिहास का अन्तिम और सर्वाधिक प्रगतिशील वर्ग है तथा सर्वहारा क्रान्तियाँ इतिहास की प्रथम और अन्तिम सचेतन संगठित क्रान्तियाँ हैं। (ङ) समाजवाद

वर्ग-समाज से वर्गविहीन समाज में संक्रमण की, हार-जीत से भरी हुई एक सुदीर्घ ऐतिहासिक अवधि है, कम्युनिज़्म में संक्रमण की उन्नत अवस्था में वर्गों के विलोपन के साथ ही राज्यसत्ता के विलोपन की भी प्रक्रिया घटित होगी। – ये कुछ ऐसे सामान्य सूत्र हैं जो उस समय तक प्रासंगिक बने रहेंगे, जब तक पूँजीवाद का अस्तित्व बना रहेगा (समाजवादी संक्रमण के दौरान भी)।

कुछ ऐसे आम नियम हैं जो साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के पूरे वर्तमान युग के जारी रहने तक प्रासंगिक बने रहेंगे। साम्राज्यवाद पूँजीवाद की चरम अवस्था है। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के सन्धि-स्थल पर उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली में कई महत्त्वपूर्ण बुनियादी, संरचनागत बदलाव आये, जिन्होंने पूरी दुनिया की राजनीति में काफ़ी कुछ बदल डाला। उत्पादक शक्तियों के विकास के क्षेत्र में, उत्पादन के संकेन्द्रण के उच्च स्तर ने पूँजीवादी इज़ारेदारियों (एकाधिकारियों) को जन्म दिया और उत्पादन-सम्बन्धों के क्षेत्र में इन इज़ारेदारियों के प्रभुत्व की स्थापना हुई। “साम्राज्यवाद, पूँजीवाद के विकास की वह अवस्था है, जिसमें पहुँचकर इज़ारेदारियों और वित्त पूँजी का प्रभुत्व दृढ़ रूप से स्थापित हो चुका है, जिसमें पूँजी का निर्यात अत्यधिक महत्त्व ग्रहण कर चुका है, जिसमें अन्तरराष्ट्रीय ट्रस्टों के बीच दुनिया का बँटवारा प्रारम्भ हो गया है, जिसमें सबसे बड़ी पूँजीवादी ताकतों के बीच पृथ्वी के समस्त क्षेत्रों का बँटवारा प्रारम्भ हो चुका है” (लेनिन)। अर्थव्यवस्था की इज़ारेदारी की प्रवृत्ति पूँजीवाद के विकास की सबसे ऊँची और अन्तिम अवस्था के रूप में, गतिरुद्ध, परजीवी और मरणोन्मुख पूँजीवाद के रूप में, साम्राज्यवाद का ऐतिहासिक स्थान निर्धारित करती है। असमान विकास, अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतियोगिता और बीच-बीच में युद्धों के रूप में उसका विस्फोट, बुर्जुआ जनवाद का क्षरण-विघटन, अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण आदि परिघटनाएँ साम्राज्यवादी युग की कुछ आम अभिलाक्षणिकताएँ हैं। इज़ारेदारी के फलस्वरूप उत्पादन का अधिकाधिक समाजीकरण होता चला जाता है और पूँजीवाद के भीतर समाजवाद का पूर्वाधार तैयार होता चला जाता है। पूँजी और श्रम के बीच ध्रुवीकरण बढ़ता चला जाता है और वर्ग-अन्तरविरोधों की उग्रता बढ़ती चली जाती है।

आज भी हम साम्राज्यवाद के युग में ही जी रहे हैं। लेकिन विगत एक शताब्दी के दौरान साम्राज्यवाद, यथावत, उसी रूप में मौजूद नहीं बना रहा है। उत्पादन की प्रणाली, शासन की प्रणाली और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में ऐसे कई महत्त्वपूर्ण बदलाव आये हैं, जिनके चलते मज़दूर क्रान्तियों के अगले चक्र की रणनीति और आम रणकौशलों में, विश्व सर्वहारा क्रान्ति की आम दिशा और स्वरूप में लाज़िमी तौर पर कुछ परिवर्तन होने ही हैं।

अतीत के वर्ग-संघर्षों के समूचे इतिहास, सभी सर्वहारा आन्दोलनों और सभी सर्वहारा क्रान्तियों के अनुभवों के सारतत्त्व का आम सूत्रीकरण विचारधारा के रूप में संघटित होता है जो प्रत्येक क्रान्ति के मार्गदर्शक सिद्धान्त का काम करता है। जहाँ तक ठोस रूप में किसी क्रान्ति की रणनीति और आम रणकौशल का प्रश्न है, उनका निर्धारण प्रत्येक देश और काल की ठोस परिस्थितियों के अध्ययन के हिसाब से होता है। परिस्थितियाँ सतत परिवर्तनशील होती हैं। इतिहास के एक ही काल में अलग-अलग देशों में सामाजिक आर्थिक विकास के स्तर के हिसाब से अलग-अलग श्रेणियों के देशों में क्रान्ति की मंज़िलें और रणनीतियाँ अलग-अलग होती हैं। यहाँ तक कि समान श्रेणी और क्रान्ति की समान मंज़िल वाले देशों में भी क्रान्ति की रणनीति में आंशिक, मात्रात्मक भिन्नताएँ और रणकौशलों के स्तर पर महत्वपूर्ण भिन्नताएँ अनिवार्यतः होती हैं। सामाजिक-आर्थिक संरचना के स्तर पर समानता रखने वाले देशों में भी क्रान्तियों की आम दिशा समान हो सकती है, लेकिन फिर भी ऐसी कोई एक क्रान्ति दूसरी क्रान्ति की कार्बन-कापी नहीं हो सकती।

यदि समाज-इतिहास की और उसकी विकास-प्रक्रिया की हमारी समझ कमज़ोर होगी, यदि क्रान्ति के विज्ञान की हमारी जानकारी ग़लत, उथली या अधूरी होगी, यदि हमारे अन्दर ठोस परिस्थितियों के ठोस विश्लेषण के श्रमसाध्य काम से बचने की प्रवृत्ति होगी, तो अतीत की क्रान्तियों से सीखने की क्षमता भी हमारे भीतर नहीं होगी। तब एक सरल-संक्षिप्त राह हम यह चुनेंगे कि परिस्थितिगत परिवर्तनों की अनदेखी करके अतीत की महान क्रान्तियों का अन्धानुकरण करेंगे, प्रासंगिक-अप्रासंगिक के बीच भेद नहीं करेंगे और जड़सूत्रवादी बन जायेंगे। तब हम सम्पन्न क्रान्तियों की रणनीति एवं आम रणकौशल को भी विचारधारा या आम सिद्धान्त बना देंगे।

यह चर्चा हम यहाँ महज़ आम सिद्धान्त-निरूपण के रूप में नहीं कर रहे हैं। यह हमारे समय की एक ठोस समस्या है। क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए सक्रिय लोग, चाहे वे मज़दूरों-किसानों को संगठित करने के काम में लगे हों या छात्रों-युवाओं के मोर्चे पर काम कर रहे हों या किसी और मोर्चे पर, उनके बीच आज यह आम समस्या मौजूद है कि समाज में क्रान्तिकारी बदलाव की परियोजना पर सोचते और अमल करते समय वे गत शताब्दी की क्रान्तियों के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति से कमोबेश ग्रस्त दिखायी देते हैं। निस्सन्देह, विभ्रम पैदा करने वाले कुछ निठल्ले “मुक्त चिन्तक” भी मौजूद हैं, लेकिन निठल्ले काम करने वालों को तभी प्रभावित करते हैं, जब उनकी वैचारिक समझ कमज़ोर हो। हमारी यह चर्चा क्रान्तिकारी परिवर्तन की भावना से लैस युवा साथियों को कुछ बोझिल ज़रूर लग रही होगी, लेकिन इन मसलों पर एक

सुनिश्चित समझ बनाना अनिवार्य है। दिशाहीन विद्रोहों-आन्दोलनों में जी-जान से लगे रहने पर भी समाज नहीं बदल सकता। क्रान्ति एक वैज्ञानिक क्रिया है। छात्र-युवा आन्दोलन समग्र सामाजिक क्रान्ति का एक हिस्सा है। छात्र-युवा जिस समाज में रहते हैं, उसके ढाँचे एवं कार्यप्रणाली को उन्हें समझना होगा। किन वर्गों का हित क्रान्ति में है, किन वर्गों का हित इस व्यवस्था में है, किन-किन तरीकों से उत्पादन होता है और उस दौरान किस प्रकार शोषण होता है, राजनीति-संविधान-कानून व्यवस्था और सैन्य तन्त्र किस प्रकार शोषण की पूरी व्यवस्था की हिफाज़त करते हैं, देशी लुटेरों के विदेशी लुटेरों से आर्थिक-राजनीतिक सम्बन्धों की प्रकृति क्या है, आम जनता की जीवन-स्थिति और चेतना का धरातल क्या है – इन सभी चीज़ों को भली-भाँति जाने-समझे बगैर न तो छात्र-युवा आन्दोलन को सही दिशा दी जा सकती है, न ही उसे व्यापक मेहनतकश जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों से जोड़ा जा सकता है और न ही कोई युवा साथी मेहनतकश आबादी के किसी हिस्से के बीच जाकर उसे जागृत और संगठित करने के काम को ही सफलतापूर्वक अंजाम दे सकता है।

चुनावी राजनीति के द्वारा इसी व्यवस्था में सुधार और पैबन्द लगाने की कोशिश करने वालों तथा फ़ैशनेबुल वाग्विलासी “क्रान्तिकारियों” से अलग, कई क्रान्तिकारी धाराएँ और प्रवृत्तियाँ देश की परिस्थितियों और क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल्लों के बारे में अलग-अलग समझ के साथ मौजूद हैं। एक सही समझ ही अन्ततोगत्वा सफलता की मंज़िल तक पहुँचा सकती है। आँख मूँदकर, या महज़ इस आनुभविक प्रेक्षण के आधार पर कि कौन अधिक जुझारू, ताक़तवर या सफल दीख रहा है, या किसके द्वारा प्रस्तुत योजना-परियोजना अधिक सुगम एवं आकर्षक है, छात्रों-युवाओं का क्रान्तिकारी राजनीति की किसी एक धारा से जुटना एकदम ग़लत होगा। सही मार्ग प्रायः सुगम-संक्षिप्त नहीं होता और सफलता कभी भी मौलिक प्रयोगों एवं विफलता के बगैर हासिल नहीं होती। इसलिए छात्र-युवा साथियों को क्रान्तियों के विश्व इतिहास और भारतीय इतिहास का अपने तई अध्ययन करना होगा, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करना होगा तथा अपने सामने मौजूद सभी क्रान्तिकारी कार्यक्रमों का अध्ययन करके निर्णय लेना होगा कि कौन-सा विकल्प सापेक्षतः अधिक तर्कसंगत, अधिक वैज्ञानिक और सामाजिक सच्चाइयों के अधिक अनुरूप प्रतीत हो रहा है। साथ ही, उन्हें छात्रों-युवाओं को संगठित करने और आन्दोलनों में भागीदारी के अनुभव अर्जित करने होंगे तथा समय निकालकर मेहनतकश आम आबादी के बीच भी जाना होगा, उनके जीवन को समझना होगा, उनका अपना आदमी बनना होगा, उनकी सेवा करनी होगी, उनसे सीखना होगा, फिर उन्हें सिखाना

होगा, उन्हें राजनीतिक शिक्षा देनी होगी और यथासम्भव उनके संघर्षों-आन्दोलनों में भी शिरकत करनी होगी। इस सूत्र को कभी नहीं भूला जाना चाहिए कि 'चीजों को बदलने के लिए चीजों को समझना होगा और चीजों को बदलने की प्रक्रिया में ही स्वयं को बदलना होगा।'

भावी क्रान्ति की तैयारियों की राह की आज एक बुनियादी समस्या यह है कि ज्यादातर उन्हें पुरानी क्रान्तियों के साँचे में ही ढालने की कोशिश की जा रही है। जीवन की नयी सच्चाइयाँ यदि एकदम आँखों में घूरने लगती हैं तो उन्हें काट-पीटकर पुराने चौखटे में ही फिट कर देने की कोशिश की जाती है, या फिर पूरे चौखटे को बदलने के बजाय उसे थोड़ा खींच-तानकर और काट-पीटकर नयी सच्चाइयों को समायोजित कर लेने की विफल कोशिशें, जनकारवाइयों और छोटे-मोटे आन्दोलनों की रुटीनी कवायदों के साथ, जारी रहती हैं।

वर्तमान परिस्थितियों और इतिहास के अपने अध्ययन के आधार पर और सीमित व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर हमारी यह पक्की धारणा है कि पूरी दुनिया और भारत देश के स्तर पर आज परिस्थितियों में कुछ ऐसे बदलाव आ चुके हैं कि भावी क्रान्तियों की आम दिशा, रणनीति एवं आम रणकौशल पिछली शताब्दी की मजदूर क्रान्तियों से भिन्न होंगे। निस्सन्देह अतीत की क्रान्तियों की आम दिशा और रणनीति एवं आम रणकौशल से सीखे बगैर हम आगे बढ़ नहीं सकते। उनमें काफ़ी कुछ सीखने को है और क्रान्तियों के इतिहास का गहन अध्ययन ज़रूरी है, लेकिन वर्तमान सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक स्थितियों का भी नये सिरे से अध्ययन करना होगा, क्योंकि इनमें हुए कई परिवर्तन बुनियादी प्रकृति के हैं। पुरानी क्रान्तियों का कार्यक्रमपरक चौखटा आज के लिए पुराना पड़ चुका है। इसकी विस्तृत चर्चा तो यहाँ सम्भव नहीं है, लेकिन कुछ संक्षिप्त-सूत्रवत चर्चा के बगैर बात स्पष्ट भी नहीं हो पायेगी।

यह सही है कि आज भी हम साम्राज्यवाद के युग में ही जी रहे हैं और मजदूर क्रान्ति के प्रथम संस्करणों की विफलता के बावजूद, विश्व-अर्थव्यवस्था का अध्ययन हमें इसी नतीजे पर पहुँचाता है कि उत्पादन के पूर्वापेक्षा कई गुना अधिक समाजीकरण की बदौलत समाजवाद का वस्तुगत आधार आज पहले से भी अधिक व्यापक एवं दृढ़ रूप में तैयार हो रहा है। यानी यह सूत्रीकरण आज की दुनिया पर भी लागू होता है कि साम्राज्यवाद सर्वहारा क्रान्ति की पूर्वबेला है। एक परिवर्तन आज यह हुआ है कि विश्वव्यापी मन्दी और ठहराव का जो संकट पहले आवर्ती चक्रीय क्रम में आता रहता था और पूँजीवाद को सताता रहता था, वह आज दीर्घकालिक ढाँचागत संकट का रूप ले चुका है और यह ऐतिहासिक सच्चाई आज पूर्वापेक्षा अधिक मूर्त और

बोधगम्य रूप में हमारे सामने है कि साम्राज्यवाद मरणोन्मुख और परभक्षी पूँजीवाद है। इतिहास की एक नयी शिक्षा यह है कि पूँजीवाद के बुढ़ापे या मरणोन्मुखता के वर्ष इसके यौवन के वर्षों से काफी अधिक लम्बे हैं।

साम्राज्यवाद की आम बुनियादी अभिलाक्षणिकताओं की आज भी मौजूदगी के बावजूद इसकी कार्यप्रणाली में और पूँजीवादी विश्व की संरचना में आज कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण बदलाव आये हैं, जिनके चलते क्रान्तिकारी वस्तुगत परिस्थितियों वाले देशों में सर्वहारा क्रान्ति की मंज़िल, उसकी रणनीति और आम रणकौशल में मूलभूत परिवर्तन आ गये हैं। पूँजीवादी वैश्विक इज़ारेदारियों के, पुराने ट्रस्टों और सिण्डीकेटों की जगह, नये-नये रूप पैदा हुए हैं। दैत्याकार राष्ट्रपारीय निगम दुनियाभर के देशों में इस प्रकार फैल गये हैं कि लगता है मानो उनका कोई राष्ट्रीय मूल ही नहीं है। लेकिन विश्व-बाज़ार में इन निगमों के हितों का प्रतिनिधित्व इनके मूल देशों की राज्यसत्ताएँ ही मुख्यतः करती हैं। वित्तीय पूँजी का भूमण्डलीय निर्बन्ध आवागमन पहले की अपेक्षा अत्यधिक निर्बन्ध और क्षिप्र हो गया है। आर्थिक उत्पादन के विकास की कारगरता एवं दर-वृद्धि करने तथा मशीनों की उत्पादकता बढ़ाकर मजदूरों से अतिलाभ निचोड़ने की प्रक्रिया को अभूतपूर्व ऊँचाइयों तक पहुँचाने के साथ ही वैज्ञानिक-तकनीकी क्रान्ति ने, और विशेषकर स्वचालन के नये स्तर एवं संचार क्रान्ति ने, वित्तीय पूँजी के भूमण्डलीय प्रवाह की गति तेज़ करने में एक अहम भूमिका निभायी है। जिसे आज भूमण्डलीकरण कहा जा रहा है, वह वस्तुतः वित्तीय पूँजी का भूमण्डलीकरण है, क्योंकि श्रम के मुक्त भूमण्डलीय आवागमन की राह में तो पहले से भी अधिक बाधाएँ खड़ी कर दी गयी हैं।

बुनियादी आवश्यकता की चीज़ों और सेवाओं का उत्पादन करने वाली वास्तविक अर्थव्यवस्था पर आज विश्व स्तर पर इज़ारेदार घरानों का एक अत्यन्त छोटा हिस्सा क़ाबिज़ है। यह वास्तविक अर्थव्यवस्था अतिलाभ निचोड़ने के साथ ही नीचे की आबादी की आय पर एक निश्चित सीमा बाँध देती है। इससे चीज़ों के उत्पादन की क्षमता बढ़ाकर लाभ कमाने की गुंजाइश कम हो जाती है और एकाधिकारी घराने वित्तीय गतिविधियों में पूँजी लगाना शुरू कर देते हैं। 1970 के दशक में विश्व अर्थव्यवस्था में ठहराव आने पर यही हुआ। परम्परागत वित्तीय गतिविधियाँ भी चूँकि ठहराव के इस दौर में धीमी पड़ गयी थीं, इसलिए वित्तीय संचालक ज़्यादा से ज़्यादा सट्टेबाज़ी की गिरफ्त में फँसते चले गये। अर्थव्यवस्था में ऋण की भूमिका पूर्वापेक्षा बहुत अधिक बढ़ गयी थी। ऋण की आसमान छूती माँग के दबाव में मुद्रा-बाज़ारों का अभूतपूर्व विस्तार हुआ और सट्टेबाज़ी के लिए दरवाज़े पूरी तरह से खुल गये।

गत शताब्दी के अन्तिम दशक तक स्थिति यह हो गयी कि चीजों और सेवाओं का उत्पादन करने वाली वास्तविक अर्थव्यवस्था में लगी हुई पूँजी के मुकाबले वित्तीय पूँजी का अनुपात कई गुना अधिक हो गया। वास्तविक उत्पादन की प्रक्रिया से स्वतन्त्र वित्तीय पूँजी, और गुब्बारे की तरह फूलता हुआ तथा पारे की तरह अस्थिर वित्तीय तन्त्र अस्तित्व में आया। गत साम्राज्यवादी शताब्दी के पचहत्तर वर्षों तक सट्टेबाज़ी यदि वास्तविक उत्पादन की लहर पर बुलबुले के समान थी तो अब वास्तविक उत्पादन सट्टेबाज़ी की लहर पर बुलबुले के समान हो गया है। पहली बार ऐसा हुआ है कि पूँजी संचय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का बुनियादी कारक-संकेतक नहीं रह गया है। वास्तविक उत्पादन क्षेत्र की सतत मन्दी की स्थिति में, मुनाफ़े की वृद्धि दर को तेज़ करते जाने की अन्धी प्रतियोगिता में पूँजी विभिन्न देशों के सट्टा-बाज़ारों में निवेशित होकर अर्थव्यवस्था की मज़बूती एवं विकास का भ्रम रचती है और फिर बेहतर विकल्प दिखायी पड़ते ही वहाँ से 'उड़नछू' हो जाती है। नतीजतन वे अर्थव्यवस्थाएँ ध्वस्त हो जाती हैं। मुनाफ़े की अन्धी होड़ के चलते, दुनिया के पिछड़े देशों में वास्तविक प्रतिस्पर्द्धी आनन-फ़ानन में एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में वित्तीय बाज़ार में निवेश को ही प्राथमिकता देते हैं।

पूँ तो बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में, इज़ारेदारियों के प्रभुत्व और वित्तीय पूँजी के प्रभुत्व के साथ ही, बुर्जुआ जनवाद का प्रतिक्रियावादी पहलू प्रधान बन गया था और उसके भीतर फ़ासीवादी धाराओं का उभार होने लगा था। अब आज वित्तीय पूँजी के 'चरम वर्चस्व' की स्थिति ने बुर्जुआ जनवाद के क्षरण-विघटन को विश्व स्तर पर उस मुक़ाम पर ला खड़ा किया है कि बुर्जुआ जनवाद और फ़ासीवाद के बीच की विभाजक रेखाएँ ही धूमिल पड़ने लगी हैं। साम्राज्यवाद ने पिछली शताब्दी के पहले दशकों तक उत्पादन की विकास-दर और मज़दूरों का शोषण बढ़ाने तथा पूँजी और श्रम के तीखे होते अन्तरविरोध की गति मद्धम करने के लिए राजकीय इज़ारेदारी का इस्तेमाल किया था। लेकिन शताब्दी के अन्तिम दशकों में बुनियादी पूँजीवादी अन्तरविरोध के तात्कालिक समाधान का यह उपकरण स्वयं ही अन्तरविरोध को उग्र बनाने लगा और अर्थव्यवस्था के ठहराव को बढ़ाने लगा। यह स्थिति एक बार फिर निजी इज़ारेदारी पूँजीवाद के विस्तार का एक अहम कारण बनी। तथाकथित 'कल्याणकारी' राज्यों का दौर समाप्त हो गया और सब कुछ बाज़ार की निर्बन्ध शक्तियों के हवाले कर देने की प्रक्रिया तेज़ गति से आगे बढ़ी।

अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धी गलाकाटू रूप में आज भी जारी है। व्यापार-युद्ध के नये-नये तरीक़े और रणनीतियाँ विकसित हुई हैं। लेकिन अतीत की क्रान्तियों

से सबक लेकर, आज साम्राज्यवादी लुटेरे अपनी-अपनी आर्थिक शक्ति के हिसाब से विश्व स्तर पर निचोड़े गये अधिशेष में अपना-अपना हिस्सा लेने का काम लम्बे समय तक करते रहते हैं, विरोधी के हर संकट का लाभ उठाने के लिए घात लगाये रहते हैं और शक्ति-सन्तुलन को बदलने के लिए परस्पर-विरोधी गुटों-गठबन्धनों में बँधते और फिर टूटते रहते हैं। अन्तरसाम्राज्यवादी अन्तरविरोध दुनिया के विभिन्न कोनों में जारी क्षेत्रीय युद्धों के पीछे बुनियादी या गौण रूप में मौजूद रहते हैं, लेकिन विश्वयुद्ध के रूप में उनके विस्फोट की सम्भावना अब बहुत कम हो गयी है, हालाँकि पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। इसका एक बुनियादी कारण यह भी है कि विश्व बाज़ार के बड़े-से-बड़े भाग पर कब्जे और वर्चस्व की लड़ाई आज उपनिवेशों के कब्जे बँटवारे के रूप में नहीं हो रही है। मुख्यतः अतीत की क्रान्तियों और वर्ग-संघर्षों के दबाव के चलते उपनिवेशों और ज़्यादातर नवउपनिवेशों का भी आज अस्तित्व नहीं रह गया है। उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद के दौर से दुनिया आगे निकल आयी है। सभी देशों के बाज़ारों में सभी साम्राज्यवादियों का प्रवेश, थोड़ी-बहुत बन्दिशों के बावजूद, आज सम्भव है।

आपसी प्रतिस्पर्द्धा के बावजूद पिछड़े देशों की जनता और शासक पूँजीपतियों पर आम सहमति की अपनी नीतियाँ थोपने के लिए साम्राज्यवादी देश आज वक़्ती तौर पर एकजुट हैं और विश्व बैंक-आई.एम.एफ-विश्व व्यापार संगठन जैसी अन्तरराष्ट्रीय एजेंसियाँ शोषण में ऋण एवं अनुदान की ज़्यादा से ज़्यादा प्रभावी भूमिका बनाकर, पिछड़े देशों के राष्ट्रीय बाज़ारों में प्रवेश को ज़्यादा से ज़्यादा निर्बन्ध बनाकर तथा मनमानी व्यापार-शर्तों को थोपने में मददगार बनकर साम्राज्यवादियों की आम सहमति की नीतियों को विश्व स्तर पर लागू करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

साम्राज्यवाद के वर्तमान दौर का एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन ग़ौरतलब है। मुनाफ़े की वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए देशी-विदेशी कम्पनियाँ किसी एक ही चीज़ के उत्पादन की पूरी प्रक्रिया को कई देशों में, और एक देश के भीतर कई जगहों पर बिखरा देती है। एक ही संयन्त्र पर असेम्बली लाइन पर जो चीज़ बनती थी, अब वह प्रक्रिया कई संयन्त्रों में विभाजित कर दी गयी है। इसे बुद्धिजीवी लोगों ने 'ग्लोबल असेम्बली लाइन' की नयी परिघटना का नाम दिया है। जहाँ जिस तरह की सस्ती श्रम-शक्ति मौजूद है, और जहाँ जिस तरह का कच्चा माल सस्ता और आसानी से उपलब्ध है, वहाँ-वहाँ अलग-अलग क्रिस्म के वैसे हिस्से बनाये जाते हैं और फिर उन्हें एक अलग संयन्त्र में जोड़कर उत्पाद को अन्तिम रूप दिया जाता है। जैसे उन्नत

देश की कोई कम्पनी किसी एक पिछड़े देश से सस्ते कच्चे माल और सस्ती श्रमशक्ति की खरीद से एक पुर्जा बनाती है, दूसरे में दूसरा पुर्जा बनाती है, तीसरे देश में तीसरा और फिर उन्हें जोड़कर किसी चौथे देश में उत्पाद अन्तिम तौर पर तैयार किया जाता है और उसे उन देशों के बाज़ारों में बेचने को भेज दिया है जहाँ उसकी माँग हो और खरीदने वाले बेहतर कीमत देने की क्षमता रखते हों। इससे मुनाफ़े की दर बढ़ाकर अतिलाभ निचोड़ने के साथ ही साम्राज्यवादियों को कई लाभ मिलते हैं। एक तो एक ही कारख़ाने की चौहद्दी में काम करने वाले मज़दूरों की बहुसंख्या को कई जगह बिखरा देने से उनकी दबाव बनाने की ताक़त फ़िलहाल कम हो गयी है। पिछड़े देशों के मज़दूरों के आने से साम्राज्यवादी देशों के भीतर जो सामाजिक संकट पैदा हो रहा था, उससे भी कुछ हद तक निजात मिल जा रही है और मज़दूरों के अर्जित अधिकारों को छीनने, उनके आन्दोलनों को तोड़ने तथा ज़्यादा काम ठेका मज़दूरों या अस्थायी मज़दूरों से करा लेना अधिक सुगम हो गया है। उत्पादन-प्रक्रिया के इस 'भूमण्डलीकरण' से फ़िलहाली तौर पर साम्राज्यवादियों को भले ही लाभ मिल रहा हो और मज़दूर आन्दोलन के समक्ष भले ही कुछ नयी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हों, लेकिन उत्पादन का और अधिक ऊँचे धरातल का यह समाजीकरण दूरगामी तौर पर समाजवाद का और अधिक व्यापक वस्तुगत पूर्वाधार तैयार कर रहा है। यह कई देशों के मज़दूरों को एक साथ जोड़ रहा है। क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रचार और संघर्षों से अर्जित उन्नत चेतना के आधार पर मज़दूर वर्ग जब इस सच्चाई को समझ जायेगा तो दूरस्थ मज़दूरों के ऐक्यबद्ध संघर्ष पूँजीवादी व्यवस्था को पंगु बना देने का काम अब पूर्वपिक्षा अधिक प्रभावी ढंग से कर सकेंगे।

एशिया-अफ़्रीका-लातिन अमेरिका के जो देश पहले उपनिवेश थे, राजनीतिक स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद वहाँ देशी पूँजीपति वर्ग सत्तारूढ़ हुए। उनमें से कुछ ने अपने देश में पूँजीवाद के विकास के लिए साम्राज्यवादी देशों से पूँजी और तकनोलॉजी की मदद पर अधिक बल दिया। वे अधिक साम्राज्यवादी दबाव में रहे और उनकी राजनीतिक आज़ादी भी उसी अनुपात में संकुचित होती गयी। कुछ देशों ने समाजवादी शिविर और अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठाकर साम्राज्यवादी मदद की शर्तों के दबाव को कम किया तथा साथ ही राजकीय पूँजीवादी ढाँचा खड़ा करके करों और जनता की बचत आदि के माध्यम से जनता से धन उगाहकर पूँजी की अपनी ज़रूरत एक हद तक पूरी की। लेकिन साम्राज्यवाद के एकीकृत विश्व अर्थतन्त्र के इस युग में इस रास्ते की एक सीमा थी और उसे सन्तृप्त होते देर न लगी। अब पूँजीवादी विकास को आगे ले जाने के लिए, धीरे-धीरे करके अर्थव्यवस्था के दरवाज़ों को विदेशी

पूँजी के लिए पूरी तरह खोल देने और राजकीय इज़ारेदारियों को कौड़ियों के मोल देशी और विदेशी पूँजीपतियों को बेच देना इन पिछड़े देशों के पूँजीवाद की अपनी ज़रूरत थी और बाध्यता भी थी। इन देशों के पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा आज राष्ट्रीय या साम्राज्यवाद-विरोधी नहीं रह गया है। यह स्वेच्छा से साम्राज्यवादियों का 'जूनियर पार्टनर' बन गया है। अधिशेष-विनियोजन में अपना हिस्सा बढ़ाने-बचाने के सवाल पर साम्राज्यवादियों से उसके अन्तरविरोध लगातार तीखे-मद्धम रूपों में चलते रहते हैं, लेकिन अब वह जनता के साथ खड़ा होकर साम्राज्यवाद से नहीं लड़ सकता। वह व्यापक जनता को लूटने में बड़े लुटेरों के साथ भागीदार है। जनता जब उसके विरुद्ध लड़ती है तो साम्राज्यवादी उसके पक्ष में दृढ़ता से खड़े होते हैं। और जनता जब साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ती है तो वह साम्राज्यवाद के पक्ष में दृढ़ता से खड़ा होता है।

तीसरी दुनिया के देशों में देशी पूँजीपति वर्गों के शासन के दौरान एक क्रमिक प्रक्रिया में, उद्योगों के अतिरिक्त गाँवों में भी पूँजीवादी विकास हुआ है और विविध रूपों में सामन्ती या प्राकृपूँजीवादी अवशेषों की मौजूदगी के बावजूद पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध प्रधान बन गये हैं, राष्ट्रीय बाज़ार संघटित हुए हैं और खेती-बाड़ी के क्षेत्र में भी बाज़ार के लिए उत्पादन की प्रवृत्ति प्रधान हो गयी है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप इन समाजों की वर्गीय संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं। कुछ देशों को छोड़कर आज तीसरी दुनिया के अधिकांश देश पिछड़े हुए पूँजीवादी देश बन चुके हैं।

हम मानते हैं कि आज भी दुनिया के पिछड़े देश ही साम्राज्यवाद की कमज़ोर कड़ी और भावी क्रान्तियों के तूफ़ानों के सम्भावनासम्पन्न केन्द्र हैं, लेकिन इन झंझा केन्द्रों की वर्गीय संरचना में और तदनुसार क्रान्ति की प्रकृति में बुनियादी परिवर्तन आये हैं। यह साम्राज्यवाद का ही युग है, लेकिन यह दौर उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद का नहीं बल्कि आर्थिक नवउपनिवेशवाद का है। और ज़्यादातर देशों में आज साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्तियाँ नहीं, बल्कि साम्राज्यवाद व देशी पूँजीवाद विरोधी, नये प्रकार की समाजवादी क्रान्तियाँ होंगी।

अपने ही देश को एक प्रतिनिधि उदाहरण के तौर पर लें। विगत आधी सदी में न केवल उद्योगों और शहरों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, बल्कि खेती-बाड़ी का भी मशीनीकरण हुआ है तथा गाँवों में कृषि-आधारित एवं सम्बद्ध उद्योग-धन्धों का विराट संजाल विकसित हुआ है। देशी पूँजीपति वर्ग ने अपने उत्पादों को बेचने और सस्ती से सस्ती दर पर श्रमशक्ति को खरीदने के लिए तथा खेती-बाड़ी में

मशीनों-उर्वरकों-उन्नत बीजों आदि का नया बाज़ार तैयार करने के लिए सामन्ती भूमि-सम्बन्धों को तोड़कर काश्तकारों को मालिक बनाने और श्रम को मुक्त करने के काम को एक क्रमिक प्रक्रिया में अंजाम दिया है। मालिकाना मिलने के बाद बड़े मालिक किसान अब पूँजी लगाकर बाज़ार के लिए पैदा कर रहे हैं और अपने खेतों में उजरती मज़दूरों की श्रमशक्ति निचोड़ रहे हैं। सामन्ती ज़मींदारों का एक हिस्सा भी अपने तौर-तरीकों को बदलकर पूँजीवादी भूस्वामी बन गया है। छोटे-मँझोले मालिक किसानों का बड़ा से बड़ा हिस्सा पूँजी की मार से उजड़कर सर्वहारा की कृतारों में शामिल हो रहा है और गाँवों-शहरों की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी आज लगभग कुल आबादी की आधी तक पहुँच रही है।

यह एक विस्तृत चर्चा का विषय है। लेकिन इतनी चर्चा से भी यह बात समझ में आ जाती है कि भारत कुल मिलाकर एक पूँजीवादी देश बन चुका है। यह स्वतन्त्र पूँजीवादी देश नहीं है, यहाँ का शासक पूँजीपति, साम्राज्यवादियों का जूनियर पार्टनर है और यह एक ऐसा पिछड़ा हुआ पूँजीवादी देश है जहाँ अभी भी सामन्ती अवशेष मौजूद हैं। भारत और तीसरी दुनिया के अधिकांश पिछड़े देशों में आज एक नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति ही सम्भव है। सामन्तवाद अवशेष मात्र के रूप में रह गया है। मुख्य अन्तरविरोध श्रम और पूँजी के बीच का अन्तरविरोध है।

बीसवीं शताब्दी में, 1917 की रूसी समाजवादी क्रान्ति के बाद विश्व पूँजीवाद के विरुद्ध विश्व सर्वहारा क्रान्ति का ज्वार जब आगे बढ़ा तो क्रान्तिकारी तूफानों का केन्द्र वे देश बने जो उपनिवेश या अर्द्धउपनिवेश थे। वहीं लूट और शोषण का दबाव अधिक था और इन्हीं कमज़ोर कड़ियों को टूटना था। इन सभी देशों में राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न तब केन्द्रीय प्रश्न था और पूँजीपतियों का एक हिस्सा भी तब साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में उतरने के लिए तैयार था क्योंकि राजनीतिक आज़ादी के बिना वह अपने विकास की कोई सम्भावना नहीं देख रहा था। उपनिवेशों-अर्द्धउपनिवेशों के पिछड़े कृषि-प्रधान समाजों में दूसरा प्रधान प्रश्न था सामन्ती भूमि-सम्बन्धों के खात्मे का, जो समूची किसान आबादी का सवाल था। सामन्ती भूस्वामी ही विदेशी सत्ता के मुख्य सामाजिक अवलम्ब थे। इसलिए सामन्तवाद-विरोध और साम्राज्यवाद-विरोध के ये दोनों अन्तरविरोध परस्पर गुँथे-बुने थे। 1970 के आसपास तक अधिकांश उपनिवेश राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल कर चुके थे और वहाँ पूँजीवादी विकास का काम आगे बढ़ चुका था। नवें दशक तक उपनिवेशों की स्थिति में काफ़ी परिवर्तन आ चुके थे और सैनिक तानाशाहियों की जगह वहाँ सीमित जनवाद की बहाली हो चुकी थी। जैसाकि हमने ऊपर चर्चा की है ये भूतपूर्व उपनिवेश और नवउपनिवेश आज भी

क्रान्तियों के तूफानों के केन्द्र हैं, पर इनकी वर्गीय सामाजिक संरचना बदल चुकी है।

पुरानी क्रान्तियों के अन्धानुकरण और कठमुल्लेपन के शिकार लोग कहते हैं कि चूँकि हम आज भी साम्राज्यवाद के युग में ही जी रहे हैं, इसलिए हमारी क्रान्ति की रणनीति और आम रणकौशल आज भी वही होंगे जो 1920 में, 1940 में या 1960 में होते। वे कहते हैं कि बीसवीं शताब्दी की महान क्रान्तियों के नेतृत्व ने यही कहा था कि एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के देशों में राष्ट्रीय जनवादी क्रान्तियाँ और यूरोप-अमेरिका में समाजवादी क्रान्तियाँ – विश्व क्रान्ति के ये दो संघटक अवयव होंगे। हमारा कहना है कि यह क्रान्ति का मार्गदर्शक सिद्धान्त नहीं, बल्कि मौजूद परिस्थितियों का मूल्यांकन है। इससे बँधना जूते के हिसाब से पैर काटने के समान होगा। परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। साम्राज्यवाद का युग मौजूद है, लेकिन उपनिवेशवाद-नवउपनिवेशवाद का दौर बीत चुका है। पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा आज क्रान्तिकारी नहीं रह गया है। अपनी ज़रूरत और बाध्यता के दबाव में वह साम्राज्यवादियों का जूनियर पार्टनर बन चुका है। इन देशों के भीतर भूमि-सम्बन्ध भी बदल चुके हैं। सामन्ती तत्त्व महज़ अवशेष के रूप में शोषण और शासन में साम्राज्यवादियों और देशी पूँजीपतियों के साथ छोटे हिस्सेदार बन चुके हैं। वे लड़ रहे हैं तो लूट में अपनी भागीदारी बढ़ाने के लिए। उनका संकट शोषण के छोटे हिस्सेदार का संकट है। अब इन देशों में भी मुक्ति की परियोजना एक समाजवादी परियोजना ही हो सकती है।

साथ ही, हमारा यह भी कहना है कि इन देशों की समाजवादी क्रान्तियाँ वैसी भी नहीं होंगी जैसी रूस में हुई थी। यहाँ पूँजीवाद का विकास रूस से भिन्न रास्ते से हुआ है। इस भिन्नता का एक मूल कारण औपनिवेशिक अतीत के चलते है और दूसरा मूल कारण इस नाते है कि आज की दुनिया 1917 के समय की दुनिया से काफ़ी भिन्न है। रूस विकसित पश्चिम और पिछड़े पूरब के सन्धिबिन्दु पर खड़ा देश था। दूसरे, प्रथम विश्वयुद्ध के चलते भी वहाँ अपवादस्वरूप, क्रान्ति की अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थीं। तीसरे, ज़ारशाही के पतन के बाद कायम पूँजीवादी सत्ता न तो स्थिर हो पायी थी, न ही अपनी जड़ों को मजबूत बना पायी थी। उसका सामाजिक आधार भी काफ़ी संकुचित था। रूस पर साम्राज्यवादी दबाव तो था, पर वहाँ का शासक वर्ग साम्राज्यवाद से उस तरह नत्थी नहीं था, जैसी आज भारत के पूँजीवाद की स्थिति है। भारत के पूँजीवाद का सामाजिक आधार काफ़ी विस्तृत है। धनी किसानों और नौकरशाही तन्त्र से जुड़े उच्च मध्य वर्ग व अन्य परजीवी वर्गों के

रूप में इसका शक्तिशाली सामाजिक अवलम्ब मौजूद है। पूँजीवादी विकास के चलते यातायात-संचार का तन्त्र काफ़ी विकसित है और राज्यसत्ता की पकड़ सुदूर क्षेत्रों तक काफ़ी व्यापक है। यह केवल राजधानी और बड़े शहरों तक सिकुड़ी-सिमटी नहीं है। इसके चलते रणकौशलों और भावी क्रान्ति के रास्ते को लेकर रूस से काफ़ी भिन्नताएँ पैदा हो चुकी हैं। यह अलग से एक विस्तृत चर्चा का विषय है, लेकिन आम नतीजे के तौर पर, यह समझना कठिन नहीं है कि अब जो साम्राज्यवाद-विरोधी पूँजीवाद-विरोधी समाजवादी क्रान्तियाँ होंगी, वे नये प्रकार की समाजवादी क्रान्तियाँ होंगी।



इन परिवर्तनों की अनदेखी करके और विगत क्रान्तियों के पदचिह्नों का अन्धानुकरण करके नयी क्रान्तियों की तैयारी नहीं की जा सकती। अतीत की क्रान्तियों का अध्ययन करके उनसे समानता और भिन्नता के मुद्दों को जानना होगा और ज़रूरी सबक लेने होंगे, लेकिन ठोस परिस्थितियों का ठोस अध्ययन करके यह समझना आज का प्रमुख कार्यभार है कि आज की नयी क्रान्तियों में नया क्या है? क्रान्तिकारियों की युवा पीढ़ी को नयी राह बनाने की चुनौतियाँ स्वीकारनी ही होंगी। पुरानी क्रान्तियों के आम निष्कर्षों को कुछ फार्मूलों के रूप में अपनाकर कुछ रूटीनी कवायद करते रहने की प्रवृत्ति को, अतीत की महान क्रान्तियों का अन्धानुकरण करने की प्रवृत्ति को हम क्रान्ति के रास्ते की एक प्रमुख बाधा के रूप में देखते हैं क्योंकि यह प्रवृत्ति आज हावी है। यह क्रान्ति के विज्ञान को समझने और विकसित करने से जी चुराना है और महज़ क्रान्तिकारी आशावाद और उत्साह के सहारे क्रान्ति कर लेने की खामख्याली में जीना है।

इसीलिए हम ज़ोर देकर यह कहते हैं कि उम्मीद को महज़ एक भावना के रूप में ज़िन्दा रखना काफ़ी नहीं है। आशावाद को एक वैज्ञानिक आधार देना होगा। जड़सूत्रवाद से बचने के लिए क्रान्ति के विज्ञान को समझना होगा और अपनी वैज्ञानिक समझ के सहारे अपने देश-काल की परिस्थितियों को समझकर नयी क्रान्तियों की राह निकालनी होगी।

यह क्रान्तिकारियों की युवा पीढ़ी का सर्वोपरि ऐतिहासिक कार्यभार है!

(जनवरी-मार्च 2004)

छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?

जो नौजवान इस मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था को मानव इतिहास की आखिरी मंज़िल – ‘इतिहास का अन्त’ – नहीं मानते, जिन्होंने प्रतिक्रिया की आततायी शक्तियों की वर्तमान विजय को अपनी नियति के रूप में स्वीकार नहीं किया है, जिनके पास अतीत के क्रान्तिकारी संघर्षों की स्मृतियों की विरासत है, वे निश्चय ही भविष्य-स्वप्नों को मुक्ति की नयी परियोजनाओं में ढालने के लिए आगे आयेंगे। एक नये विश्व-ऐतिहासिक महासमर की तैयारी में ऐसे ही नौजवान अगली क़तारों में होंगे।

जहाँ बज रही है भविष्य-सिम्फ़नी
जहाँ स्वप्न खोजी यात्राएँ कर रहे हैं
जहाँ ढाली जा रही हैं आगत की साहसी परियोजनाएँ,
स्मृतियाँ जहाँ ईंधन हैं,
लुहार की भाथी के कलेजे में भरी
बेचैन गर्म हवा जहाँ ज़िन्दगी को रफ़्तार दे रही है,
वहाँ तुम्हें होना है

अगर तुम युवा हो!

(शशि प्रकाश)

ऐसे सभी बहादुर, स्वाभिमानी, स्वप्नद्रष्टा और संवेदनशील युवाओं को विचारसम्पन्न बनने – क्रान्ति के विज्ञान को समझने – की प्रक्रिया में सबसे पहले इतिहास की एक बुनियादी शिक्षा को आत्मसात करना होगा और वह यह है कि केवल शौर्य और शहादत के जज़्बे के सहारे थोड़े-से नौजवान क्रान्ति को अंजाम नहीं दे सकते। किसी देश के नौजवानों की बहुसंख्या भी यदि विद्रोह के लिए उठ खड़ी हो तो क्रान्ति का लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सकता। आनन-फ़ानन में क्रान्ति कर डालने का रूमानी

खयाल बेचैन, विद्रोही युवा दिलों को प्रायः आकर्षित करता है और प्रायः युवा आन्दोलन को दुस्साहसवाद के आत्मघाती दलदल में ले जाकर धँसा देता है। अच्छी नीयत और पवित्र भावनाओं के बावजूद यह दुस्साहसवाद भी क्रान्ति के लिए वैसा ही घातक होता है, जैसा रियायतों के चीथड़ों की भीख माँगने वाला सुधारवाद। एक सच्ची क्रान्ति हर-हमेशा जनक्रान्ति हुआ करती है। बहुसंख्यक मेहनतकश जनता की संगठित शक्ति ही क्रान्तियों को अंजाम दे सकती है। पूँजी की सत्ता की सुरक्षा में सन्नद्ध मारक से मारक शस्त्रों से लैस सामरिक शक्ति को वह प्रचण्ड वेगवाही तूफान की तरह तबाह कर देती है। इतिहास का निर्माण नायक नहीं, बल्कि वह आम जनता करती है जो समस्त सामाजिक सम्पदा और संस्कृति की निर्मात्री होती है। इस बुनियादी सूत्र को कभी भुला नहीं दिया जाना चाहिए। नायक जन्मना नहीं होते। संघर्ष और निर्माण की अनवरत प्रक्रिया में जनता के बीच से जो हरावल शक्तियाँ उभरकर आगे आती हैं, वही नायक की भूमिका निभाती हैं और उनमें से कुछ लोग मानो क्रान्ति का प्रतीक-चिह्न बन जाते हैं।

शहीद क्रान्तिकारी विचारक **भगतसिंह** ने भी अपने समय तक के भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास और अपनी पीढ़ी के अनुभवों से यही निष्कर्ष निकाला था कि थोड़े-से क्रान्तिकारी युवा जनता को जागृत और संगठित किये बिना स्वयं हथियार उठाकर क्रान्ति को सफल नहीं बना सकते। निस्सन्देह, समाज-व्यवस्था-परिवर्तन में बल की भूमिका धाय की होती है, बल-प्रयोग के बिना किसी राज्यसत्ता को चकनाचूर नहीं किया जा सकता। लेकिन ऐसा बल-प्रयोग केवल जागृत-संगठित जनशक्ति ही कर सकती है। उस जनशक्ति को जागृत-संगठित करने के लिए समाज के जागरूक, अग्रणी तत्त्व जनता के बीच जाते हैं, उसके बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई चलाते हैं और रोज़मर्रा की छोटी-छोटी माँगों को लेकर उन्हें संगठित होकर संघर्ष करना सिखलाते हैं। और इससे भी पहले, इस प्रक्रिया में वे स्वयं समाज का अध्ययन करते हैं, अपनी समझ को परखते और पुख्ता बनाते हैं; उत्पादन, राजकाज और समाज के ढाँचे को समझते हुए जनता को शोषण एवं दमन के बुनियादी कारणों एवं तौर-तरीकों से परिचित कराते हैं, उसके सामने एक न्यायपूर्ण और समतापूर्ण वैकल्पिक सामाजिक ढाँचे की विश्वसनीय एवं व्यावहारिक तस्वीर पेश करते हैं और फिर उसके लिए संघर्ष के वास्ते जनसमुदाय को संगठित करते हैं। इस पृष्ठभूमि में उस महान सन्देश की प्रासंगिकता सहज ही समझी जा सकती है, जो पचहत्तर वर्ष पहले फाँसी की कालकोठरी से भगतसिंह ने इस देश के नौजवानों को भेजा था :

“नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फ़ैक्ट्री-कारखानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आज़ादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।”

कोई पूछ सकता है कि यह जिम्मेदारी नौजवानों के ही कन्धों पर क्यों? इसका सटीक उत्तर चीनी क्रान्ति के महान नेता माओ त्से-तुङ ने काफ़ी पहले इन शब्दों में दे दिया था : “नौजवान लोग समाज की सबसे अधिक सक्रिय और सबसे अधिक प्राणवान शक्ति होते हैं। उनमें सीखने की सबसे तीव्र इच्छा होती है तथा उनके विचारों में रूढ़िवाद का प्रभाव सबसे कम होता है।” छात्रों से बातचीत करते हुए एक बार उन्होंने कहा था : “यह दुनिया तुम्हारी है, यह हमारी भी है, लेकिन अन्ततोगत्वा यह तुम्हारी ही होगी। तुम नौजवान लोग ओजस्विता और जीवन-शक्ति से भरपूर, सुबह आठ या नौ बजे के सूरज की तरह अपनी ज़िन्दगी की पुरबहार मंज़िल में हो। हमारी आशाएँ तुम पर लगी हुई हैं।”



व्यापक मेहनतकश जनता दो जून की रोटी और बुनियादी ज़रूरतों के लिए दिन-रात हाड़तोड़ मेहनत करती हुई उजरती गुलामी की चक्की में पिसती रहती है। सभ्यता-संस्कृति की विरासत और इतिहास के ज्ञान से वंचित करके, उससे इंसानी ज़िन्दगी की न्यूनतम शर्तें तक छीन ली जाती हैं। हालात से विद्रोह करके उनकी चेतना सामाजिक क्रान्ति की दिशा में बार-बार आगे बढ़ती है, लेकिन समाज और इतिहास के अध्ययन तथा क्रान्ति के विज्ञान की समझ के बिना क्रान्ति को संगठित नहीं किया जा सकता। ऐसे में क्रान्तिकारी परिवर्तन के स्वरूप, तरीक़े और राह से उन्हें परिचित कराने का दायित्व उन थोड़े से शिक्षित युवाओं के कन्धों पर ही होता है जो ज्ञान और संस्कृति की विरासत से लैस होते हैं और सभ्यता-समीक्षा में सक्षम होते हैं। निश्चित ही वे शिक्षित युवा इस काम को अंजाम नहीं दे सकते, जो मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा हुए हैं और जिनका “स्वर्ग” इसी व्यवस्था में सुरक्षित है। परजीवी शोषक जमातों से अपवादस्वरूप ही ऐसे साहसी युवा आयेंगे, जो अपने वर्ग से खुद को तोड़कर उत्पीड़ित जनता की मुक्ति-परियोजना से जुड़ेंगे। यह दायित्व हर हाल में आम जनता के बहादुर, विवेकवान सपूतों का ही होगा।

ऐसे क्रान्तिकारी भावनाओं-विचारों वाले युवक आम जनता के बीच क्रान्ति का

सन्देश महज़ प्रचारक या उपदेशक के रूप में लेकर नहीं जायेंगे। जनता का हरावल बनने के लिए उन्हें 'जनता का आदमी' बनना होगा, उसके जीवन और संघर्षों से एकरूप हो जाना होगा, उसे सिखाने के पहले उससे सीखना होगा। क्रान्ति के बारे में सिर्फ किताबी जानकारी के बूते वे अमली कार्रवाइयों में सक्षम नहीं हो सकते। सिर्फ ज्ञान-जगत में प्रतिबिम्बित जीवन से ही नहीं, बल्कि उन्हें सीधे जीवन से भी सीखना होगा। तभी वे वास्तव में क्रान्तिकारी युवा बन सकेंगे। **'नौजवान आन्दोलन की दिशा'** नामक अपने प्रसिद्ध लेख में माओ त्से-तुङ ने लिखा है : "कोई नौजवान क्रान्तिकारी है अथवा नहीं, यह जानने की कसौटी क्या है? उसे कैसे पहचाना जाये? इसकी कसौटी केवल एक है, यानी यह देखना चाहिए कि वह व्यापक मज़दूर-किसान जनता के साथ एकरूप हो जाना चाहता है अथवा नहीं, तथा इस बात पर अमल करता है अथवा नहीं? क्रान्तिकारी वह है जो मज़दूरों व किसानों के साथ एकरूप हो जाना चाहता हो, और अपने अमल में मज़दूरों व किसानों के साथ एकरूप हो जाता हो, वरना वह क्रान्तिकारी नहीं है या प्रतिक्रान्तिकारी है।" निश्चित ही, किसानों से तात्पर्य आज की स्थिति में पूँजीवादी लूट-मार के शिकार छोटे किसानों से ही हो सकता है, स्वयं मेहनतकश का शोषण करने वाले मुनाफ़ाख़ोर खुशहाल मालिक किसानों से नहीं। निचोड़ यह कि सबसे पहले, क्रान्तिकारी युवाओं को समस्त सामाजिक सम्पदा के उत्पादक श्रमजीवी वर्गों के साथ एकरूप होना होगा, उनके बीच जाना होगा, सुधार की बहुविध कार्रवाइयों के जरिये सच्चे दिल से उनकी सेवा करनी होगी, बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रम के सामाजिक बँटवारे से जन्मे बुद्धिजीवियों के सभी विशेषाधिकारों और श्रेष्ठ होने की मानसिकता को पूरी तरह से त्यागना होगा। तभी आम लोग उन्हें अपना समझकर उन पर भरोसा करेंगे, दिल से उनकी बातें सुनेंगे और उन पर अमल करेंगे। और क्रान्तिकारी युवा भी केवल तभी व्यावहारिक क्रान्तिकारी बन पायेंगे, सामाजिक जीवन के सभी अन्तरविरोधों को समझ पायेंगे और क्रान्तिकारी संघर्षों की तैयारी और प्रगति में कामयाब हो सकेंगे।

साथ ही, जनता का विश्वास जीतने और क्रान्ति के विज्ञान को अमली रूप में समझने के लिए यह भी अनिवार्य है कि क्रान्तिकारी नौजवान अपने आदर्शों को स्वयं अपने जीवन में लागू करते हों। मसलन, शारीरिक श्रम को नीचा करके देखने की मानसिकता से पूरी तरह मुक्त होने के साथ ही, उन्हें जातिगत भेदभाव की मानसिकता से और तमाम सामाजिक कुरीतियों एवं रूढ़िवाद से राई-राई रत्ती-रत्ती मुक्त होना होगा। तभी वे क्रान्ति के राह की इन सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं के विरुद्ध सतत आन्दोलन चला सकेंगे और व्यापक जनएकजुटता कायम कर सकेंगे, जो व्यवस्था-परिवर्तन

के लिए जनता की जुझारू लामबन्दी की बुनियादी शर्त है।

जिसे आमतौर पर “सुधार की कार्रवाई” कहा जाता है, उसके बारे में भी अपना नजरिया साफ़ कर लेना एक क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन के पुनर्निर्माण के लिए बेहद ज़रूरी है। जनता की जीवन-स्थितियों में सुधार और इसी सामाजिक-आर्थिक ढाँचे के भीतर उसे कुछ सहूलियतें दिलवा देना यदि हमारा अन्तिम लक्ष्य हो तो यह सुधारवाद होगा। इसका मतलब होगा, इस शोषक व्यवस्था को कायम रखते हुए इसके नग्न अनाचारों-अत्याचारों में कुछ कमी लाना और इस व्यवस्था की उम्र लम्बी बनाना।

इसका मतलब होगा पूँजीवाद के दामन पर लगे खून के धब्बों को साफ़ करना। इसका मतलब होगा जनता को यह बताना कि पैबन्द माँग-माँगकर पूरी कमीज़ तैयार की जा सकती है, यानी यह बताना कि रियायतों की छोटी-छोटी लड़ाइयों और सुधारों से जिन्दगी जीने लायक बनाकर गुज़र कर लो, क्योंकि इतना ही सम्भव है और क्रान्ति असम्भव या अव्यावहारिक है। इसका मतलब होगा जनता को यह भ्रम देना कि हुकूमती जमातों को समझा-बुझाकर और कुछ दबाव देकर धीरे-धीरे अपना हक़ हासिल किया जा सकता है या शान्तिपूर्ण ढंग से उनका दिल बदलकर या उन्हें कायल करके, व्यवस्था भी बदली जा सकती है, अतः बलात परिवर्तन या क्रान्ति की “परेशानियाँ” उठाने की कोई ज़रूरत नहीं। वर्ग-शोषण वाले समाजों में, और विशेषकर पूँजीवादी समाज में, सुधारवाद हमेशा ही अनेकशः रूपों में मौजूद रहा है और नये-नये रूपों में सामने आता रहा है। यह जनाक्रोश के दबाव को कम करने वाले ‘सेफ़्टी वॉल्व’ की, व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति की और जनता के लिए ‘धोखे की टट्टी’ की भूमिका निभाता रहा है। क्रान्ति-मार्ग का परित्याग कर चुकी भारत की सभी चुनावी वामपन्थी पार्टियाँ भी सुधारवाद पर ही अमल करती हैं और आजकल पूरे देश में सक्रिय एन.जी.ओ. सुधारवादी राजनीति के सबसे नये और सबसे प्रभावी उपकरण हैं।

लेकिन जो क्रान्तिकारी नौजवान पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध व्यापक जनता को एक निर्णायक क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए संगठित करना चाहते हैं, उन्हें भी क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा के साथ-साथ न केवल रोज़मर्रा की जिन्दगी की छोटी-छोटी माँगों को लेकर जनान्दोलन संगठित करने होंगे, बल्कि अनेकशः स्तरों पर सुधारपरक कार्रवाइयाँ भी संगठित करनी होंगी। यदि क्रान्तिकारी परिवर्तन का लक्ष्य और एक सुनिश्चित कार्य-योजना हमारे पास हों तो व्यापक आबादी से एकजुटता बनाने, उसकी चेतना को जुझारू बनाने तथा उसे जागृत, गोलबन्द और संगठित करने के उद्देश्य से संगठित सुधार की कार्रवाइयाँ और अधिकारों की

छोटी-छोटी लड़ाइयाँ एक लम्बे क्रान्तिकारी संघर्ष की कड़ी बन जाती हैं। ऐसे उपक्रम युवाओं को यह अवसर देते हैं कि वे आम जनता की जिन्दगी के निकट जायें, उससे एकरूप हो जायें और उसका विश्वास जीतें। इस दौरान युवाओं को सामाजिक अध्ययन और जाँच-पड़ताल का भी अवसर मिलता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि चीजों को बदलने के लिए उन्हें जानना अनिवार्य होता है।

कुछ ठोस उदाहरण लें। किसी भी व्यवस्था में शिक्षा और संस्कृति का स्वरूप और ढाँचा इस बात से तय होता है कि राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था का चरित्र क्या है और राज्यसत्ता किस वर्ग के हाथों में है। सभी वर्ग-समाजों में शासक वर्ग की शिक्षा-संस्कृति ही समाज पर हावी होती है। शिक्षा-संस्कृति के ढाँचे को निर्णायक तौर पर तभी बदला जा सकता है, जब शासन-सूत्र वास्तव में जनता के हाथों में आ जाये। लेकिन सामाजिक क्रान्ति की तैयारी के दौरान भी हम शिक्षा और संस्कृति के वैकल्पिक उपक्रम संगठित करते हैं और जनता की चेतना के क्रान्तिकारीकरण के लिए इनका इस्तेमाल करते हैं। मिसाल के तौर पर, क्रान्तिकारी छात्र और युवा संगठनों को जातिगत-सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वास के विरुद्ध, नौजवानों के साथ-साथ व्यापक आम आबादी की भी चेतना जागृत करने के लिए अध्ययन मण्डलों, रात्रि-पाठशालाओं, पुस्तकालयों, नाट्य एवं गायन टीमों आदि-आदि का गठन करना होगा। ऐसा करके वे निश्चय ही पूँजीवादी शिक्षा और संचार-माध्यमों को बराबरी की टक्कर नहीं दे सकते, लेकिन ऐसे संगठित प्रयासों के द्वारा वे रूढ़ियों और अन्धविश्वासों की दिमागी गुलामी से आम जनता और नौजवानों के जितने बड़े हिस्से को और जिस हद तक मुक्त कर सकेंगे, उतनी हद तक क्रान्ति की कृतारों में नौजवानों की भर्ती की सम्भावनाएँ बढ़ जायेंगी और आम जनता की पहलकदमी और सर्जनात्मकता भी निर्बन्ध होती जायेगी। मान लें कि क्रान्तिकारी युवाओं का कोई संगठन मज़दूरों की किसी बस्ती में स्वास्थ्य-शिविर आयोजित करता है तो वह जनता की सेवा करने और उनका विश्वास जीतने के साथ ही उनके बीच यह प्रचार भी करता है कि निःशुल्क स्वास्थ्य-सुविधा आम जनता का एक बुनियादी अधिकार है और यह बाज़ार में बिकने वाला माल नहीं है। यहाँ से इस बुनियादी अधिकार के लिए संघर्ष की तैयारी शुरू हो जाती है। मान लें कि ऐसा कोई युवा संगठन जनपहलकदमी को जागृत करके किसी बस्ती या गाँव में सफ़ाई-अभियान, सड़क मरम्मत, पुल-निर्माण जैसा कोई काम हाथ में लेता है, तो वह जनता को इस बात के लिए भी तैयार करता है कि वह सरकार और जनप्रतिनिधियों को कठघरे में खड़ा करे तथा अपनी इन माँगों को लेकर आन्दोलन के लिए तैयार हो। ऐसे अनगिनत प्रयासों की कड़ियाँ जब जुड़ती चली जाती हैं तो

जनता स्वयं अपनी संगठित शक्ति और सर्जनात्मकता से परिचित होकर आगे बढ़ती है, उसमें फ़ैसले लेने का आत्मविश्वास पैदा होता है (जो बाद में आगे बढ़कर शासन चलाने का आत्मविश्वास बन जाता है) और इस प्रक्रिया में जगह-जगह भ्रूण रूप में वैकल्पिक लोक-सत्ता के प्लेटफ़ार्म उभरने लगते हैं। नौजवानों को यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि क्रान्तिकारी परिवर्तन का संघर्ष शोषक और शोषित वर्गों के बीच का वर्ग-युद्ध है, जिसमें मात्र कुछ छिटफुट झड़पों और चलायमान युद्धों से फ़ैसला नहीं होगा। फ़ैसला भले ही अन्ततोगत्वा व्यापक जनविद्रोह के तड़ित-प्रहार द्वारा पूँजीवादी राज्यसत्ता के दुर्ग को ध्वस्त करने द्वारा होगा, लेकिन उस मंज़िल तक पहुँचने की प्रक्रिया कुछ ऐसी होगी मानो दो पक्ष किसी युद्ध में 'पोज़ीशन' बाँधकर लम्बे समय तक युद्धरत हों। इसके लिए जनान्दोलनों और जनता के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार के साथ-साथ जनपहलकदमी व जनसर्जनात्मकता को जगाकर ऐसी संस्थाएँ व ऐसे उपक्रम खड़े करने होंगे, जो निर्माणाधीन "जनदुर्ग" के बुर्ज़ों और परकोटों की भूमिका निभायें। तभी व्यापक जनसमुदाय में यह भरोसा भी पैदा होगा कि एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण सम्भव है जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के ढाँचे पर उत्पादन करने वालों का नियन्त्रण होगा और फ़ैसले की ताकत उनके हाथों में होगी।



बेशक 'सबके लिए समान शिक्षा और सबके लिए रोज़गार के समान अवसर' का नारा ही क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन का केन्द्रीय नारा हो सकता है। तब पूछा जा सकता है कि इसके बजाय हमने सबसे पहले और सबसे विस्तार से इस बात की चर्चा क्यों की है कि नौजवानों को व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच जाकर घुल-मिल जाना चाहिए, क्रान्तिकारी प्रचार की कार्रवाई करनी चाहिए, कुछ रचनात्मक कार्यक्रम चलाने चाहिए आदि-आदि।

इसका एक सीधा-सा उत्तर यह दिया जा सकता है कि भगतसिंह के ऊपर उद्धृत कथन को हम आज की परिस्थिति में, जब प्रगति की लहर पर हावी प्रतिक्रिया की लहर को पीछे धकेलकर इंसानियत की रूह में हरकत पैदा करने के लिए एक नयी शुरुआत की ज़रूरत है, एकदम सटीक और प्रासंगिक मानते हैं कि नौजवानों को क्रान्ति का सन्देश लेकर कल-कारखानों, गन्दी बस्तियों और गाँव की जर्जर झोंपड़ियों तक जाना होगा। यह नौजवानों का सर्वोपरि दायित्व है। उन्नत चेतना वाले क्रान्तिकारी युवाओं के ऊपर ही यह ज़िम्मेदारी है कि वे मेहनतकश जनता के संघर्षों को क्रान्ति के विज्ञान से लैस करें और ऐसा वे तभी कर सकते हैं, जब जनता के

बीच जाकर वे आन्दोलनात्मक और रचनात्मक कार्यों में भागीदारी करें, उसके जीवन से एकरूप हो जायें तथा स्वयं जीवन एवं क्रान्ति की व्यावहारिक शिक्षा लेते हुए अपना व्यक्तित्वान्तरण करें।

शिक्षा और रोज़गार के प्रश्न पर नौजवानों का संघर्ष समाज के अन्य संघर्षों से अलग-थलग नहीं, बल्कि उनसे अविभाज्यतः जुड़ा हुआ है। राजनीतिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से देखें तो बेरोज़गारी एक ऐसी परिघटना है, जो पूँजीवादी व्यवस्था में अनिवार्यतः मौजूद रहती है और व्यवस्था का संकट बन जाती है। इसी तरह औकात के हिसाब से बँटी हुई असमान शिक्षा और बाज़ार में बिकाऊ माल जैसी उसकी स्थिति भी वस्तुतः पूँजीवाद की एक बुनियादी अभिलाक्षणिकता है। यानी सबके लिए समान शिक्षा और रोज़गार के समान अवसर के लिए संघर्ष पूँजीवाद की एक आम बुनियादी प्रवृत्ति के विरुद्ध संघर्ष है। यह संघर्ष पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष है और आम जनता के सभी वर्गों के पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष से जुड़कर, उसका अंग बनकर ही, यह सार्थक और सफल हो सकता है। अन्यथा सुधारवाद की अन्धी, चक्करदार गलियों में गुम हो जाना इसकी नियति होगी।

इसलिए 'सबके लिए समान शिक्षा और सबको रोज़गार के समान अवसर' के लिए छात्रों-युवाओं की व्यापक आबादी को संगठित करने के साथ ही यह काम भी क्रान्तिकारी युवाओं की अगुवा क़तारों का ही है कि वे पूँजी द्वारा सड़कों पर धकेले जाने वाली और दर-बदर की जाने वाली और उजरती गुलामी की चक्की में दिन-रात पिस रहे मेहनतकश जनसमुदाय तक जायें, उसके संघर्षों में भागीदारी करें, अपना वर्ग-रूपान्तरण करके संघर्ष की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उसके हरावल की भूमिका निभायें, उन्हें क्रान्ति के विज्ञान से परिचित करायें और फिर उनके बीच से क्रान्ति के हरावल दस्ते पैदा करने में भूमिका निभायें। साथ ही, यह भी उन्हीं का दायित्व है कि वे शिक्षा और रोज़गार के सवाल को लेकर उद्वेलित और आन्दोलित व्यापक छात्र-युवा आबादी को यह बतायें कि अपने संघर्ष को व्यापक मेहनतकश आबादी के पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से जोड़े बिना वे कुछ राहें-रियायतें भले ही हासिल कर लें, लेकिन अपने मक़सद में कामयाब क़तई नहीं हो सकते। इसलिए उन्हें न केवल आम आबादी के क्रान्तिकारी संघर्ष से जुड़ना होगा बल्कि उसे नये सिरे से संगठित करने और आगे बढ़ाने में भी अपनी भूमिका निभानी होगी। एक नयी शुरुआत तभी हो सकेगी जब छात्र-युवा आन्दोलन आम जनता के सभी वर्गों के संघर्ष के लिए एक क्रान्तिकारी भर्ती केन्द्र बन जाये। क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन का यह पहलू आज उसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

सोचने की बात है कि छात्रों और नौजवानों के लगभग सभी संगठन समान शिक्षा और सबको रोज़गार के अधिकार को लेकर लड़ने की बातें करते हैं, फिर इन माँगों पर कोई छात्र-युवा आन्दोलन संगठित क्यों नहीं हो पाता? इन नारों का जुबानी जमाखर्च करने वाले अधिकांश छात्र संगठन इस या उस पूँजीवादी चुनावी पार्टी के पुछल्ले हैं। वे छात्र आबादी को भरमाने के लिए ऐसे नारे उछालते हैं। अपनी साख बचाने के लिए कभी-कभार वे कुछ आन्दोलनों की रस्मी क़वायद करते हैं और कभी-कभार यदि कुछ रियायतें हासिल भी हो जायें तो वह किसी पार्टी विशेष या उस समय सत्तारूढ़ सरकार की साख बढ़ाने के काम आता है। ऐसे छात्र-युवा संगठन आन्दोलन को व्यापक मेहनतकश जनता के संघर्ष की कड़ी बना ही नहीं सकते। यह उनका मक़सद ही नहीं होता। उनका एकमात्र मक़सद होता है, छात्र-युवा आबादी को क्रान्तिकारी लक्ष्य से दूर करना; ग़ैरमुद्दों पर भड़काकर बुनियादी मुद्दों से उनका ध्यान हटाना; उन्हें क्षेत्र, जाति, धर्म, भाषा आदि के आधार पर बाँट देना और छात्र-युवा आन्दोलन को पूँजीवादी चुनावी राजनीति के नये रंगरूटों की भर्ती एवं प्रशिक्षण केन्द्र बनाये रखना। संसद में बहसबाज़ी करने वाली नक़ली वामपन्थी पार्टियों के पुछल्ले छात्र-युवा संगठन भी मूलतः यही खेल खेलते हैं, लेकिन फ़र्क़ यह है कि वे अपना खेल कुछ गर्मागर्म नारों और “मज़दूर क्रान्ति” आदि के जुबानी जमाखर्च के साथ-साथ खेलते हैं। चुनावी वामपन्थी पार्टियाँ मज़दूरों के बीच अर्थवादी-सुधारवादी सरगर्मियाँ करती हैं और इनके छात्र-युवा संगठन सालाना कुछ रस्मी आन्दोलनों और कुछ जलसों की क़वायद करते रहते हैं। हाल के वर्षों में यह फ़र्क़ ज़रूर पड़ा है कि ऐसे नामधारी वामपन्थी छात्र-युवा संगठनों की नक़ली-क्रान्तिकारिता आम छात्रों-युवाओं के बीच काफ़ी हद तक नंगी हो चुकी है। लेकिन क्रान्तिकारी छात्र-युवा राजनीति का इनका भोंड़ा स्वाँग अभी भी बदस्तूर जारी है।

आज की नंगी सच्चाई यह है कि कैम्पसों के बाहर, समाज में, सड़कों पर किसी नौजवान आन्दोलन की रस्मी सरगर्मियाँ भी नाममात्र को ही देखने को मिल रही हैं। कॉलेजों, विश्वविद्यालयों के कैम्पसों में पिछले एक दशक से भी कुछ अधिक समय से पसरा हुआ सन्नाटा टूटने के संकेत अभी नज़र नहीं आ रहे हैं। पूँजीवादी और छद्म-वामपन्थी छात्र-संगठनों और व्यक्तिवादी-कैरियरवादी छात्र-नेताओं की ओर आम छात्रों ने उम्मीद की निगाह से देखना काफ़ी पहले बन्द कर दिया। लेकिन ऐसा कोई प्रभावी क्रान्तिकारी विकल्प उनके सामने मौजूद नहीं है, जो उनमें नयी उम्मीदें जगा सके। इस कड़वी सच्चाई की अनदेखी नहीं की जा सकती कि निराशा और ठहराव के इस माहौल में छात्रों की आबादी के बीच फ़ासीवादी प्रवृत्तियों ने भी विविध रूपों

में तेज़ी से पैर पसारें हैं। पीले बीमार चेहरों वाले, रुग्ण मानस आम मध्यवर्गीय युवाओं की एक अच्छी-खासी तादाद धार्मिक कट्टरपन्थ या उग्र जातिवाद की या तरह-तरह की गुण्डागर्दी की राजनीति करने वाले, चिकने चमकदार चेहरों वाले कुटिल गिरोहबाज़ों के पीछे जा खड़ी हुई है। इस माहौल में आम छात्रों की एक अच्छी-खासी आबादी निराशा और निरुपायता के चलते अराजनीतिकरण की घातक प्रवृत्ति का शिकार होकर अपने खोल में सिकुड़ती चली गयी है।

छात्रों-युवाओं के बीच एन.जी.ओ. की घुसपैठ हालात को और अधिक गम्भीर बना रही है। साम्राज्यवादियों, देशी पूँजीपतियों और सरकार के पैसों से चलने वाले ये संगठन समाज में वर्ग-अन्तरविरोधों को धूमिल करने के लिए सुधारवादी पैबन्दबाज़ी की नयी-नयी शातिराना चालें चलने और पूँजीवादी व्यवस्था की नयी सुरक्षा पंक्ति तथा नये 'सेफ्टी वॉल्व' के रूप में काम करने के साथ ही, क्रान्ति की कृतारों में भर्ती की सम्भावना से लैस जुझारू, ईमानदार युवाओं को सामाजिक कार्यों की आड़ में भरमा-बहकाकर सुधारवाद के दलदल में फँसा देते हैं, उन्हें "वेतनभोगी सामाजिक कार्यकर्ता" बनाकर भ्रष्ट कर देते हैं और व्यवस्था में समायोजित कर लेते हैं। हालत यह है कि कल तक क्रान्तिकारी वाम छात्र राजनीति की धारा से जुड़े हुए (और आज भी ऐसा दावा करने वाले) कुछ छात्र संगठन ऐसे भी हैं जो एन.जी.ओ. के साथ खुलेआम अभिसार कर रहे हैं और ऐसे कैरियरवादी, निठल्ले, फ़ैशनपरस्त वामपन्थी युवाओं के जमावड़े बन चुके हैं जो कुछ दिनों तक छात्र राजनीति का शौक पूरा कर लेने के बाद इस या उस एन.जी.ओ. के टुकड़खोर या चाकर बन जाते हैं।

क्रान्तिकारी वामपन्थी धारा के बहुतेरे ऐसे छोटे-छोटे छात्र संगठन हैं जो कुछ रस्मी काम और कुछ गरम नारों की जुगाली करते हुए, विपथगामी होकर नक़ली वामपन्थी छात्र संगठन के गिरोह में शामिल हो जाने की दिशा में उन्मुख हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो वैचारिक संकीर्णता, कठमुल्लेपन और अतिवामपन्थी लफ़्फ़ाज़ी के शिकार हैं। ज़मीनी कार्रवाइयों और व्यापक छात्र आबादी को जागृत-संगठित करने के लिए जनदिशा पर अमल करने के बजाय वे गर्मगर्म नारे देते हैं तथा आनन-फ़ानन में हथियारबन्द क्रान्ति का रोमानी सपना दिखाते हैं। साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के विरुद्ध नयी समाजवादी क्रान्ति की बदली परिस्थितियों को समझने के बजाय ये संगठन आज भी भारत को अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक बताते हैं और राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति का नारा देते हैं। जनकार्रवाइयों के बारे में समझ के अभाव और देश की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की ग़लत समझ के चलते ऐसे छात्र संगठन अब

तक व्यापक छात्र आबादी का कोई आन्दोलन न तो संगठित कर पाये हैं, न ही भविष्य में कर पायेंगे। व्यवहारतः ऐसे छात्र संगठन देश के कुछ पिछड़े-दुर्गम क्षेत्रों में “वामपन्थी” दुस्साहसवादी लाइन पर जारी सशस्त्र संघर्षों के लिए कैम्पसों से कुछ नये रंगरूट भर्ती करने के साथ-साथ या तो कुछ सेमिनार-टाइप बौद्धिक अनुष्ठान करते हैं या फिर कुछ रैडिकल सुधारवादी कार्रवाइयाँ करते हैं।

मुद्दा चाहे बिड़ला-अम्बानी रिपोर्ट और तमाम सरकारी निर्णयों द्वारा लगातार थोपी जा रही घोर पूँजीपरस्त शिक्षा-नीतियों का हो, लगातार बढ़ती फ़ीसों और घटती सीटों का हो, शिक्षा संस्थानों को सीधे पूँजीपति घरानों को सौंपने का हो या कैम्पसों में लगातार सिकुड़ते जा रहे जनवादी ‘स्पेस’ का हो, छात्र आन्दोलन कहीं भी प्रभावी प्रतिरोध संगठित कर पाने की स्थिति में नहीं है।

इस स्थिति को तोड़ने के लिए इसके मूलभूत कारणों को समझना ज़रूरी है। पहली बात तो यह कि जब पूरी दुनिया और पूरे देश के पैमाने पर क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है और क्रान्तिकारी राजनीति की धारा वैचारिक कमज़ोरी, परिस्थितियों की ग़लत समझ, अतीत की क्रान्तियों के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति तथा इन सबके परिणामस्वरूप ठहराव एवं विघटन की शिकार है, तो यह पूरा परिदृश्य क्रान्तिकारी छात्र एवं युवा राजनीति के परिदृश्य को भी प्रभावित कर रहा है। लेकिन इस स्थिति को बदलने में भी क्रान्तिकारी नौजवानों को ही महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। स्थितियों की सही समझ के आधार पर छात्र-युवा आन्दोलन के पुनर्निर्माण के प्रयासों के साथ ही प्रबुद्ध क्रान्तिकारी युवाओं को मेहनतकश वर्गों की क्रान्तिकारी राजनीति के पुनर्निर्माण के बारे में भी सोचना होगा, मेहनतकश वर्गों के बीच भी काम करना होगा और क्रान्ति की हरावल क़तारों में छात्रों-युवाओं के बीच से नयी भर्ती की ज़बरदस्त मुहिम छेड़नी होगी।

कैम्पसों में छात्र आन्दोलन के ठहराव-बिखराव का एक दूसरा अहम कारण विगत लगभग बीस वर्षों के दौरान छात्र आबादी की संरचना में आया महत्वपूर्ण बदलाव भी है। लगातार घटती सीटों और बढ़ती फ़ीसों के चलते आज उच्च शिक्षा के केन्द्रों में छात्र आबादी बहुत घट गयी है। और जो हैं भी, वे ज़्यादातर खाते-पीते घरों के स्वार्थी, कैरियरवादी और सामाजिक सरोकारों से रहित लाड़ले हैं, जिनका “स्वर्ग” काफ़ी हद तक इसी व्यवस्था में सुरक्षित हैं। तकनोलॉजी, प्रबन्धन आदि ‘प्रोफ़ेशनल कोर्सेज़’ पर ज़ोर बढ़ा है और मँहँगी पढ़ाई के इन क्षेत्रों में समाज के धनिक वर्गों के छात्रों का वर्चस्व है। आम घरों के छात्र कुछ उपेक्षित विषयों की पढ़ाई ही कर पाते हैं और किसी भी तरह का रोज़गार पा लेने की बदहवास कोशिशों में लगे रहते

हैं। बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी से तो अपवादस्वरूप ही कोई युवा उच्च शिक्षा के कैम्पसों तक पहुँच पाता है। अब ज़्यादातर निम्न मध्यवर्गीय छात्र भी विश्वविद्यालयों और प्रतिष्ठित कॉलेजों के कैम्पसों से बाहर ठेल दिये गये हैं। वे या तो महानगरों के निम्नमध्यवर्गीय रिहायशी इलाकों या फिर दूर-दराज़ के क़स्बे-देहात के उपेक्षित कॉलेजों में हताश कुण्ठित पड़े हुए भविष्य के अन्धकूप में डूब-उतरा रहे हैं, या कोई छोटा-मोटा रोज़ी-रोज़गार करते हुए बेहतर रोज़गार पाने की कोशिश में लगे हैं, या फिर कारख़ाना-गेटों पर दिहाड़ी और ठेका मज़दूरों की क़तारों में खड़े हैं।

इसीलिए आज कैम्पस केन्द्रित छात्र आन्दोलनों की सम्भावनाएँ वस्तुगत तौर पर भी कम हो गयी हैं। छात्र आन्दोलन और नौजवान आन्दोलन के संयुक्त रूप में एक छात्र-युवा आन्दोलन के रूप में संगठित होने की अनुकूल परिस्थितियाँ अब पहले हमेशा से अधिक तैयार हैं और उसे व्यापक मेहनतकश अवाम के पूँजी-विरोधी संघर्षों से सीधे जोड़ देने की सम्भावनाएँ भी पहले से अधिक पैदा हो गयी हैं। पूरे समाज से लेकर कैम्पस तक में आये संरचनागत बदलावों के चलते, क्रान्तिकारी छात्र आन्दोलन के पुराने जड़ीभूत, बद्धमूल साँचे और ख़ाँचे को पूरी तरह से बदल देना होगा और उपरोक्त बदलावों के मद्देनज़र एक नये कार्यक्रम के आधार पर नयी शुरुआत करनी होगी।

छात्रों और युवाओं को अपनी राजनीतिक प्रचारमूलक तथा आन्दोलनात्मक सर्गर्मियों को कैम्पसों से बाहर सड़कों पर और मेहनतकश तथा निम्नमध्यवर्गीय रिहायशी बस्तियों में लाना होगा। वहाँ छात्रों-युवाओं को शिक्षा और रोज़गार के मुद्दों पर संगठित करते हुए उन्हें आम मेहनतकश आबादी के बीच भी अनेकशः रचनात्मक कार्यक्रम लेने पड़ेंगे, उनके आन्दोलनों में भागीदारी करनी होगी तथा उनके बीच क्रान्तिकारी प्रचार की कार्रवाई संगठित करनी होगी।

कैम्पस के बाहर युवा शक्ति जिस हद तक संगठित और आन्दोलित होगी और आम जनता के संघर्षों से जितनी जुड़ी होगी, उतनी ही अधिक मदद हमें कैम्पस में भी रोज़मर्रा के मुद्दों पर, जनवादी अधिकार के मुद्दों पर तथा शिक्षा और रोज़गार के व्यापक प्रश्नों पर आम छात्रों को संगठित करने में मिलेगी। छात्र आन्दोलन संगठित करने की दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों के कैम्पसों पर केन्द्रित करना अधिक उचित होगा क्योंकि वहाँ आम घरों के छात्र बड़ी तादाद में होंगे, हालाँकि उनकी पिछड़ी सांस्कृतिक-राजनीतिक चेतना के चलते राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण का काम अधिक चुनौतीपूर्ण होगा। जो उच्च शिक्षा के प्रतिष्ठित महानगरीय कैम्पस हैं, वहाँ छात्र आन्दोलन की ज़मीन तो कमज़ोर होगी, लेकिन वहाँ से क्रान्ति की क़तारों में ऐसे

उन्नत तत्त्वों की भर्ती की सम्भावना अधिक होगी, जो संख्या में तो निश्चित ही कम होंगे, पर यदि वे आम मेहनतकश जनता के साथ एकरूप हो सके तो अत्यन्त बहुमूल्य सिद्ध होंगे।

हमारा प्रस्ताव है कि बदली परिस्थितियों के इस आकलन पर तथा नये सिरे से क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन के निर्माण के रास्ते के बारे में, उसके स्वरूप, एजेण्डा और प्राथमिकताओं के बारे में, हमारी इस सोच पर इस देश के सभी परिवर्तनकामी छात्र युवा संजीदगी के साथ सोचें, बहस-मुबाहसा करें और प्रयोग करते हुए एकराय होने की कोशिश करें।

राह चाहे हज़ार मील लम्बी हो, शुरुआत एक क़दम उठाकर ही की जाती है। हमें एक नयी शुरुआत करनी ही होगी।

भगतसिंह ने जो भविष्य-स्वप्न देखा था, उसे मुक्ति की परियोजना में ढालने और अमली जामा पहनाने का काम अभी भी हमारे सामने एक यक्ष प्रश्न के रूप में खड़ा है। उस महान युवा विचारक क्रान्तिकारी की शहादत के पचहत्तर वर्ष पूरे होने को आ रहे हैं। क्या अब भी हम उस आह्वान की अनसुनी करते रहेंगे? क्रान्तिकारी तूफ़ानों में उड़ान भरने के लिए अपने पंखों को तोलने के वास्ते भविष्य मुक्तिकामी युवा दिलों का आह्वान कर रहा है। गर्वीले गरुड़ और तूफ़ानी पितरेल इस आह्वान की अनसुनी क़तई नहीं कर सकते।

(जनवरी-मार्च 2005)

अगर तुम युवा हो

जहाँ स्पन्दित हो रहा है बसन्त
हिंस्र हेमन्त और सुनसान शिशिर में
वहाँ है तुम्हारी जगह
अगर तुम युवा हो!

जहाँ बज रही है भविष्य-सिम्फ़नी
जहाँ स्वप्न खोजी यात्राएँ कर रहे हैं
जहाँ ढाली जा रही हैं आगत की साहसी परियोजनाएँ
स्मृतियाँ जहाँ ईंधन हैं,
लुहार की भाथी के कलेजे में भरी
बेचैन गर्म हवा जहाँ ज़िन्दगी को रफ़्तार दे रही है,
वहाँ तुम्हें होना है
अगर तुम युवा हो!

जहाँ दर-बदर हो रही है ज़िन्दगी,
जहाँ हत्या हो रही है जीवित शब्दों की
और आवाज़ों को क़ैद-तन्हाई की
सज़ा सुनायी जा रही है,
जहाँ निर्वासित वनस्पतियाँ हैं
और काली तपती चट्टानें हैं
वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा है
अगर तुम युवा हो!

जहाँ संकल्पों की बैरिकेड खड़े हो रहे हैं
जहाँ समझ की बंकरें खुद रही हैं
जहाँ चुनौतियों के परचम लहराये जा रहे हैं
वहाँ तुम्हारी तैनाती है
अगर तुम युवा हो!